तो उसमें पाज़ेटिव ग्रैार रेशम से रगड़ें तो उसमें निगेटिव विद्युत् प्रवेश करती है। विद्युत् के ग्राकर्षण के नियमें से पाठक स्वयं ऐसे पदार्थों की परोक्षा कर सकते हैं। विद्युत् का भिन्न भिन्न प्रकार ग्रैार बराबर बराबर उत्पन्न होना नीचे की परीक्षा से सिद्ध होगा।

मोम की एक दृढ़ छड़ी ग्र के उपरी छोर में ऊनकी व टोपी लगी हुई है जो रेशम के क धागे से ग्रलग निकाल ली जा सकती है। टोपी ग्रैार छड़ी को ग्रापस में रगड़ कर रेशम के धागे के द्वारा यदि टोपी को विद्युन्निरूपक यन्त्र के पास हम लेजावें तो गेंद, जो पहले ही से पाज़ेटिव विद्युद्युक्त रक्खी जाती है, निराकर्षित होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि टोपी में पाज़िटिव विद्युत् है। यदि हम छड़ी को यन्त्र के पास ले जावें तो गेंद ग्राकर्षित होती है। इससे सिद्ध होता है कि छड़ी में नेगेटिव विद्युत् विद्यमान है। यदि दोनें को एक साथ हम ले जावें तो न ग्राकर्षण हो होता है, न निराकर्षण। प्रवाहक पदार्थों में ग्रधिक समय तक विद्युत् संग्रहीत रखने के लिए ग्रप्रवाहक पदार्थों का प्रयोग किय जाता है। प्रवाहक पदार्थ तभी तक विद्युद्युक्त रह सकता है जब तक वह ग्रप्रवाहक पदार्थ से परिवेष्टित हो। ऐसा न करने से विद्युत्प्रविष्ट पदार्थ का पृथ्वो से, जोकि प्रवाहक पदार्थ है, स्पर्श होते ही विद्युत् पृथ्वी में प्रवेश कर जाती है। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ की विद्युत् सरलता से पृथ्वी में प्रवेश कर सकती है। प्रवाहकता में पृथ्वी की बराबरी ग्रैार कोई पदार्थ नहीं कर सकता। जिस पदार्थ में विद्युत् ग्रधिक काल तक रखना हो वह कांच के ग्रासन पर ग्रथवा राल के ऊपर रक्खा जाता है; ग्रथवा रेशम के तागे से लटका दिया जाता है। ऐसा करने से उस पदार्थ का दूसरे किसी प्रवाहक पदार्थ से स्पर्श नहीं होने पाता। यह लिखा जा चुका कि, पूरा ग्रप्रवाहक पदार्थ संसार में कोई नहीं है; ग्रतएव कांच इत्यादि के द्वारा भी विद्युत् शनैः शनैः पृथ्वी में प्रवेश करती रहती है। किसी भी प्रवाहक पदार्थ को हाथ में लेकर हम घर्षण द्वारा उसमें विद्युत् नहीं उत्पन्न कर सकते; क्योंकि, उत्पन्न होतेही, विद्युत् हमारे शरीर द्वारा, पृथ्वी में प्रवेश कर जाती है। जिस प्रवाहक पदार्थ में विद्युत् उत्पन्न करना होता है उसमें कांच का एक दण्ड पकड़ने के लिए लगा रहता है। (चित्र देखो।)

प्रवाहक शक्ति ही के द्वारा पदार्थों में एक दूसरे के स्पर्श होने से विद्युत् प्रविष्ट हो जाती है। इस विद्युत्-संचार को 'स्पर्श-प्रवाह' कहते हैं।

माणिक्यचन्द्र।

हुएन-संग।

बहुतेरे पाठक इस विचित्र ग्रक्षर-योजना से चकित होंगे। पर इतिहास के प्रेमी इस नाम से ग्रपरिचित नहीं है; वे भली भांति यह जानते होंगे कि भारतवर्षीय इतिहास के घोर तिमिराच्छन्न क्षेत्र के बीच यह उन प्रकाश की ज्योतियों में से सबसे उज्ज्वल है जो ग्रपनी निकटवर्ती वस्तुग्रों को स्पष्ट ग्रैार प्रकाशित करती हैं। इसी दृढ़-प्रतिज्ञ, उन्नताशय ग्रैार साहसी चीनी यात्री की कृपा से हम इस देश की सातवीं शताब्दी की सामाजिक, धार्म्मिक तथा राजनैतिक ग्रवस्था का थोड़ा बहुत ज्ञान सम्पादन कर सकते हैं। लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि पुरातत्व-वेत्ताग्रों को इस भारतवर्ष में सच्चा पथ-प्रदर्शक ग्रैार सहायक ग्रन्त में ढूँढ़ते ढूँढ़ते यही विदेशी मिला। हम लोग केवल इस महानुभाव ही के नहीं, वरन उस जाति के ग्रैार उस भूमि के जिसमें उसने जन्मग्रहण किया, ग्रनुगृहीत हैं। यह पुरुष कैान था, किस ग्रभिप्राय से ग्रैार किन किन कठिनाइयों के उपरान्त वह यहां तक ग्राया, इन बातों के जानने की इच्छा

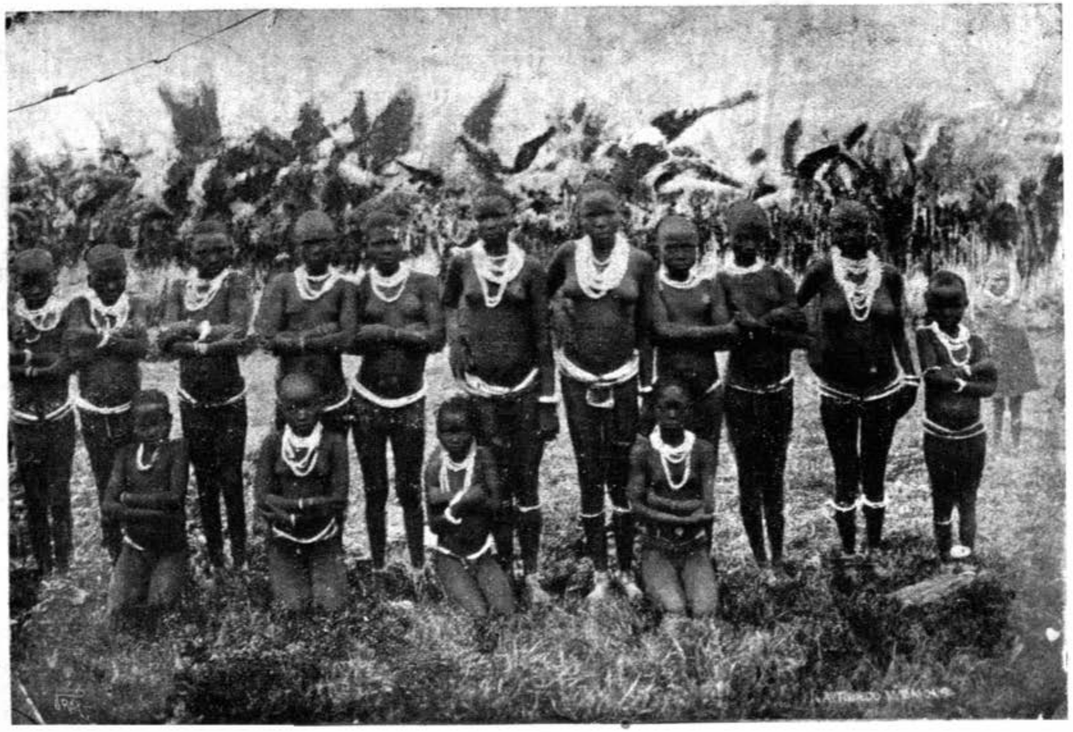

वकांबे जाति की स्त्रियां और लड़कियां ।

रखना भारतवासी मात्र का परम धर्म्म ग्रैार कर्त्तव्य है। यदि इस कर्त्तव्य के पालन से, जिसमें बहुतही कम परिश्रम है, वे विमुख रहें ते इससे या ते उनकी अल्पज्ञता प्रकट होगी या घोर कृतघ्नता। यदि यह बेचारा श्रामण अपने जन्म-स्थान के कई सहस्र कोस दूर न छोड़ता ते कान्य-कुब्ज, कैाशाम्बी ग्रैार पाटलिपुत्र इत्यादि नगरों की लम्बाई, चैाड़ाई, जन-संख्या ग्रैार रीति व्यवहार आदि का इस उत्तमता के साथ कैान पता देता? हम भारतवासी इस उपकार के कभी नहीं भूल सकते।

ढाई हज़ार वर्ष से ऊपर हुए कि इस देश की सामाजिक ग्रैार धार्म्मिक ग्रवस्था से असन्तुष्ट हो कर, पशुग्रों के आर्त्तनाद पर करुणा करके भगवान बुद्धदेव ने इस भूमि पर अवतार लिया। हिन्दू-समाज की वर्त्तमान पतित अवस्था का सूत्रपात उस समय हो चुका था। उच्च वर्ण का मिथ्या अभिमान लोगों के चित्त में भर रहा था। ईश्वर, देवी ग्रैार देवताग्रों के अवलम्ब पर लोग न जानें कितने कुत्सित कर्म्म कर डालते थे। गैातम ने एक नये मत का उपदेश देना आरम्भ किया। सबसे पहले ते उन्हेंाने वर्णभेद का ही तिरस्कार किया ग्रैार मनुष्यों की स्वाभाविक समानता के विषय में शिक्षा दी। उससे पहले निम्नवर्ग के लोग ही, जो द्विजों के द्वारा पद-दलित किये जाते थे, इस ग्रोर झुके। बैाद्धमत निरीश्वरवादी है। विचार करने से जान पड़ता है कि इस प्रकार के विश्वास की उस समय गैातम के आवश्यकता देख पड़ी थी। ईश्वर का नामोच्चार करके, किसी देवता की आराधना पूर्वक उससे क्षमा माँग कर, लोग निज कृत दुष्कर्म्मों के परिणाम से अपने के मुक्त मान लेते थे। इस लिए बुद्ध ने ईश्वर या किसी ग्रन्य देव-विषयक विचार का मूलोच्छेद करना ही कल्याणकारी समझा। उन्हेंाने लोगों से कहा कि किये हुए कर्म्मों के फल से निस्तार करनेवाला कोई नहीं। यज्ञ, हवन, बलिदान आदि से कुछ लाभ नहीं। गैातम के मत का अभिप्राय सदाचरण की शिक्षा थी।

मगध देश के राजा अशोक के समय में (५७० वर्ष ई० पू०) इस धर्म्म की बड़ी उन्नति हुई। इस मत के प्रचारार्थ न केवल समस्त भारतवर्ष ही में, वरन ग्रन्य दूर दूर देशों में भी, उपदेशक भेजे गये। उन देशों के निवासियों के अपने प्रचलित मत के सामने यह एक अत्यन्त ही उन्नत ग्रैार उदार धर्म्म देख पड़ा। दूसरी ग्रैार तीसरी शताब्दी के लगभग बैाद्ध मत ने केवल सारे भारतवर्ष ही के नहीं आच्छादित कर लिया, वरन चीन, तिब्बत, मञ्चूरिया, तुर्किस्तान, ब्रह्मा, सिंहलद्वीप, आदि देशों में भी उसका डङ्का बजा। प्राचीन काल में बहुत दिनों तक भारतवर्ष इन देशों का, ग्रैार मुख्यकर चीन का, तीर्थस्थान रहा। झुण्ड के झुण्ड चीनी यात्री इस पुण्यस्थल में आते ग्रैार भगवान शाक्य मुनि की जन्मभूमि का दर्शन कर अपने के कृत-कृत्य मानते। खि-नी, फ़ा-हियान, संग-यून, हुएन-संग आदि इन्हीं चीनी तीर्थयात्रियों के नाम हैं। इन सब में सबसे ऊंचा आसन हमारे चरित्र-नायक धर्म्मवीर हुएन-संग ही का है।

हुएन-संग का जन्म चीन देश के एक नगर में एक ऐसे समय में हुआ जब चीनी राज्य में शत्रुग्रों के भय से एक प्रकार की हलचल सी पड़ी थी। उसके पिता ने इन्हीं सब उपद्रवों से विवश होकर राजाश्रय छोड़ दिया था ग्रैार अपना सारा समय अपने चार पुत्रों की धर्म्मशिक्षा में लगाता था। इनमें से दे ने, जिनमें से एक हमारे चरित्र-नायक हैं, बहुत शीघ्र प्रसिद्धि लाभ की। बालक हुएन-संग शिक्षा के हेतु एक बैाद्ध मठ में बैठाया गया, जहां पर उसने होनहार होने के कई लक्षण दिखलाये। आवश्यक शिक्षा के उपरान्त, जिसमें उसके अपने बड़े भाई से बहुत सहायता मिली, वह १३ वर्ष की छोटी अवस्था में बैाद्ध-सन्यासियों की मण्डली में सम्मिलित कर लिया गया। सात वर्ष तक ते यह युवक सन्यासी अपने बड़े भाई के साथ चीन के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों में उस समय के विख्यात धर्म्माचार्य्यों के उपदेश सुनने के निमित्त

भ्रमण करता रहा। युद्ध का हाहाकार समय समय पर उसके एकान्त अध्ययन में बाधा डालने लगा। यहां तक कि उसको राज्य के अत्यन्त दूर-स्थित भाग में शरण लेना पड़ा। उसके सदाचरण और उसकी गम्भीरता के कारण उसकी बहुत प्रतिष्ठा होने लगी। केवल २० ही वर्ष की अवस्था में वह धर्म्मोपदेशक के पद पर नियुक्त हुआ।

उसके अगाध पाण्डित्य की चर्चा इसके पहले ही दूर दूर तक फैल चुकी थी। वह बौद्धों के मुख्य मुख्य धर्म्म-ग्रन्थों का अध्ययन कर चुका था, बुद्ध के जीवन-वृत्तान्त से अच्छी तरह जानकार हो चुका था और अध्यात्म्य के गूढ़ तत्वों को भी छान चुका था। उसने कनफ्यूशियस और लाओस के सिद्धान्तों को भी मनोनिवेश पूर्वक विचारा था। परन्तु इतने पर भी उसका चित्त शङ्काओं से विचलित रहा करता था। छ वर्ष तक तो वह चीन के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्या-पीठों में घूमता रहा। पर जहां कहीं वह शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाता, वहां स्वयं उसीको शिक्षक होना पड़ता। जब उसने देखा कि उस देश के बड़े बड़े धुरन्धर आचार्य्य भी उसकी शङ्कायें निवारण नहीं कर सकते, तब उसने परमपावन पुण्यभूमि भारतवर्ष की यात्रा का दृढ़ सङ्कल्प किया।

पाठक! उसी भारतवर्ष को, जहां से किसी समय में भूमण्डल की सभ्य जातियों को सदाचरण और धर्म्म की शिक्षा मिलती थी, आज काल ने दारिद्र, अज्ञान और मूर्खता के हाथ बे कर दिया है। चीन, जापान, ब्रह्मा, सीलोन, तिब्बत, स्याम आदि देशों के निवासियों के परम पूज्य धर्म्माचार्य्य का जन्म-स्थान यही पावन भूमि है। इसी नाते से जापान आज भारतवासियों को शिल्प शिक्षा में सहायता देने के लिए उद्यत है; इसी नाते से आज सीलोन के धर्म्मिष्ट धर्म्मपालजी काशी में यहां वालों के हित-साधन की इतनी चेष्टा कर रहे हैं।

फा-हियान, सङ्ग-यून आदि प्राचीन यात्रियों के कार्य्य और वृत्तान्त से हुएन-संग जानकार था। वह इस बात को निश्चय-पूर्वक जानता था कि भारतवर्ष में उसको उन मूल संस्कृत ग्रन्थों का पता लगेगा जिनके चीनी अनुवाद ने उसके चित्त में इतनी शङ्कायें छोड़ रक्खी हैं। यद्यपि उसने इस लम्बी यात्रा की आपत्तियों को भी सुना; पर उस धीर-प्रकृति महानुभाव ने कहा, "वह धर्म्मशास्त्र जो प्राणियों का पथप्रदर्शक और उनकी मुक्ति का उपाय है, उसका उद्धार बहुतही वांच्छनीय है"। परोपकार करने की लालसा इसको कहते हैं। किन्तु उस समय बिना चीन-सम्राट की आज्ञा प्राप्त किये किसीको देश से बाहर जाने का अधिकार न था। कई और बौद्ध-सन्यासियों के साथ उसने सम्राट के पास इस यात्रा की आज्ञा पाने के लिए विनय-पत्र भेजा। आज्ञा नहीं मिली। उसके साथियों का तो सब उत्साह यहीं पर जाता रहा; पर हुएन-संग का नहीं। यह कारण इतना बड़ा नहीं था कि उसका व्रत भङ्ग कर दे। सांसारिक वासनाओं को तो वह पहले ही परित्याग कर चुका था। इससे समस्त आपत्तियों और विघ्नों का सामना करने और जीवन को एक ऐसे कार्य्य में निछावर कर देने के लिए, जो उसका मुख्य हेतु है, वह बद्धपरिकर हो गया। ६२९ ई० में उसने बिना राजाज्ञा ही अपना देश छोड़ा और भारत के लिए प्रस्थान किया।

वह पीतनद, हयङ्ग हो, होते हुए उस स्थान पर आ पहुंचा जहां भारतवर्ष की ओर आनेवाले यात्री एकत्रित होते थे। यद्यपि यहां के हाकिम की आज्ञा थी कि कोई मनुष्य चीनी सीमा के उसपार न जाने पावे, पर हुएन-संग अपने सहधर्म्मियों की सहायता से चीनी रक्षकों को आँख बचा कर निकल गया। उसके पीछे गुप्तचर छोड़े गये। वह हाकिम के सामने उपस्थित किया गया। हाकिम उसकी प्रतिज्ञा की दृढ़ता और उसका धार्म्मिक उत्साह देखकर दङ्ग रह गया और विवश हो कर उसने उसको आगे बढ़ने की आज्ञा दे ही दी। सच है, उत्तम प्रकृति का प्रभाव ऐसा ही होता है।

इस समय तक तो उसके और साथी थे; पर यहाँ पर उन्होंने उसका सङ्ग छोड़ दिया। हुएन-संग अब अकेला निस्सहाय रह गया। किन्तु इतने पर भी उसका साहस न डिगा दूसरे दिन प्रातःकाल एक मनुष्य उसे मिला जो उसका मार्ग-प्रदर्शक हो गया। थोड़ी दूर तक तो इस व्यक्ति ने यात्री को सकुशल पहुंचा दिया, पर जब रेगिस्तान निकट आया तब यह भी नौ दो ग्यारह हुआ। कठिनाई के समय में साथ देनेवाले इस संसार में बिरले ही मिलते हैं। अभी चीनी राज्य के पाँच और रक्षा-दुर्ग तै करने को बाक़ी थे। सामने विस्तृत रेगिस्तान फैला पड़ा था जिसमें सिवाय घोड़ों की टाप के चिन्ह और मनुष्यों की खोपड़ियों के और कोई दूसरा मार्ग का चिन्ह उपलब्ध न था यात्री ने शाक्यमुनि का स्मरण करते हुए इस कठिन मार्ग पर पैर रक्खा।

यद्यपि वह मार्ग में कई बेर इधर उधर भटका, पर अन्त में किसी न किसी तरह पहले दुर्ग तक पहुँच गया। यहां पर रक्षकों के बाणों ने उसके जीवन और उसकी अभिलषित यात्रा का अन्त कर दिया होता, पर रक्षकों का नायक स्वयं एक धर्म्मिष्ठ बौद्ध था उसने इस विलक्षण साहसी श्रामण को आगे बढ़ने की आज्ञा दी और आगे आनेवाले दूसरे दुर्गों के रक्षकों के नाम भी पत्र लिख दिये। तीन दुर्ग तो उसने किसी न किसी प्रकार पार किया। परन्तु उसने सुना कि अन्तिम दुर्ग के रक्षकों को किसी प्रकार अर्थ वा शिक्षा द्वारा राह पर लाना कठिन है। उनकी दृष्टि बचाने के लिए हुएन-संग को बड़ा लम्बा चक्कर काटना पड़ा। वह एक दूसरे ही रेगिस्तान से हो कर चला। वहां जाकर वह अपना मार्ग भूल गया। गहरी विपत्ति का सामना हुआ। यहीं तक बस नहीं; वह पात्र, जिसमें वह पीने के लिए जल भरे हुए था, फट गया। यही निश्चय होने लगा कि इसी रेगिस्तान में जल के लिए तरस तरस कर उसको प्राण देना होगा। अबकी बेर उसके सङ्कल्प की बड़ी ही तीव्र परीक्षा हुई। हुएन-संग ऐसे दृढ़चित्त मनुष्य का भी साहस थोड़ी देर के लिए छूट गया। निराश हो कर वह पीछे की ओर लौटने लगा। थोड़ी ही दूर गया होगा कि वह सहसा रुक गया और अपने को इस प्रकार धिक्कारने लगा—"हा! मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक भारतवर्ष न पहुंचूंगा, एक पैर पीछे न रक्खूंगा। तो फिर मैं यहां तक आया क्यों? पश्चिम की ओर बढ़ते हुए मर जाना अच्छा है; पर पूर्व की ओर लौट जाना और जीवित रहना अच्छा नहीं"। धन्य है साहस! धर्म्म की मर्य्यादा की रक्षा ऐसे ही लोगों के द्वारा हो सकती है।

चार दिन और चार रात वह रेगिस्तान के बीच बिना एक घूँट जल के सफ़र करता रहा। अपने धर्म्म के विनय-कांड के वाक्यों ही से वह अपने चित्त को ढाढस देता था। पर ऐसे धर्म्म के वाक्यों से कितनी शान्ति मिल सकती है; जो यह सिखलाते हैं कि कोई ईश्वर नहीं, कोई सृष्टिकर्त्ता नहीं, कोई सृष्टि नहीं;—है क्या? केवल मन। हमारा यात्री फिर आगे की ओर बढ़ा और अन्त में एक बड़ी झील के किनारे आ पहुंचा। इस समय वह तातारियों के देश में था। इन लोगों ने उसका बड़े आदर के साथ स्वागत किया। एक तातारी ख़ां, जो एक धर्म्मिष्ट बौद्ध था, हमारे यात्री को अपने यहां ले गया और अपने देश के लोगों को उपेदश देने के निमित्त ठहरने के लिए आग्रह करने लगा। किन्तु किसी तरह यह दृढ़प्रतिज्ञ महानुभाव इस पर सहमत न हुआ। बिना शान्तिप्रदायिनी भारतवर्ष की पुण्य-भूमि तक पहुंचे उसको विश्राम कहां? इस पर ख़ां ने उसको बलात् रोक रखने का लक्षण प्रगट किया। ख़ां का यह भाव देखकर उस महात्मा ने कहा—"मैं जानता हूं कि सम्राट अपने अतुल प्रताप के रहते भी मेरे मन और इच्छा पर प्रभुत्व नहीं रखते"। उसने भोजन इत्यादि सब छोड़ दिया। तीन दिन तक वह इस प्रकार पड़ा रहा; अन्त में ख़ां ने इसका परिणाम अच्छा न देखकर सन्यासी को उसकी

इच्छानुसार कार्य्य करने की आज्ञा दी। हुएन-संग ने वचन दिया कि मैं भारतवर्ष से लौटते समय यहां तीन वर्ष तक रहूंगा और आपकी इच्छा पूर्ण करूंगा। एक महीने तक वह तातार देश में रहा। वहां का ख़ां और उसके दरबारी नित्य अपने पवित्र अतिथि का उपदेश सुनने को आते थे।

यहां से हमारा यात्री बहुत से लोगों के साथ, और २४ राजाओं के नाम जिनके राज्य में से होकर उसको यात्रा करनी पड़ी थी, पत्र लेकर चला। मार्ग उसी स्थान से हो कर गया था जिसे आजकल संगरी (Dsungary) कहते हैं; अर्थात् वह मसूर-दबगन, बेलूरटाग पर्वत, यक्सर्टेज़ की घाटी, बलख़ और काबुलिस्तान होता हुआ चला। हम उन सब स्थानों का, जिन से हो कर वह गया, यहां विवरण नहीं दे सकते; यद्यपि उन स्थानों का और उनके निवासियों का, जो मार्ग में मिले, उसने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। मसूर-दबगन पहाड़ का वह इस तरह वर्णन न करता है—

"पहाड़ों की चोटियां आकाश से बातें करती हैं। सृष्टि के आरम्भ से यहां पर हिम एकत्र हो रही है; और अब बर्फ़ की लम्बी लम्बी चट्टानों के रूप में हो गई है, जो ग्रीष्म और वसन्त में भी नहीं पिघलती। कठोर और चमकीली बर्फ़ की चादरें, जहां तक देखिए, बिछी हुई दिखाई पड़ती हैं। यदि कोई उनकी ओर देखता है तो चमत्कार से आँखों में चकाचौंध होने लगती है। मार्ग के दोनों किनारों पर जमी हुई चोटियां आकाश में लटकती हैं; कोई कोई तो इनमें से १०० फ़ीट ऊँची और २० या ३० फ़ीट मोटी हैं। यात्री बिना कठिनाई के इन पर से चढ़ कर नहीं पार कर सकता। इसके सिवा प्रचण्ड आँधी और बर्फ़ की बौछार यात्रियों पर आक्रमण करती हैं। दोहरे जूते और मोटे मोटे पशमीनों से ढका रहने पर भी यात्री बिना काँपे नहीं रह सकता"।

ऐसे कठिन मार्ग से होकर हमारे यात्री को चलना पड़ा। सात दिन में उसने इस बर्फ़िस्तान को तै किया। इतने में इसके चौदह साथी छूट गये।

फ़र्ग़ाना, समरक़न्द, बोख़ारा, और बलख़ आदि मध्य एशिया के प्रधान प्रधान नगर उसके रास्ते में पड़े। हुएन-संग ने यहां के निवासियों की सभ्यता का बहुत कुछ पता दिया है। बौद्धधर्म्म ही का प्रचार इन स्थानों में उस समय विशेष था। केवल कहीं कहीं बैक्ट्रियन रीति के अनुसार अग्नि-पूजा भी होती थी।

यह यात्री काबुल की राह से हिन्दुस्तान में आया था। जिन जिन हिन्दू राज्यों में वह गया, वहां का हाल उसने बड़े विस्तार के साथ लिखा है। पहले उसे नगरहार का राज्य मिला। यह नगरहार जलालाबाद की निकटस्थ भूमि की राजधानी थी। बौद्ध धर्म्म के ही माननेवाले इस राज्य में अधिक बसते थे; किन्तु हिन्दूधर्म्म का भी प्रचार था।

नगरहार से चलकर फिर वह गान्धार देश में आया, जिसकी राजधानी पौ-लौ-च-पौ-लो, अर्थात् संस्कृत पुरुषपुर, और आधुनिक पेशावर, थी। यहां पहुंचने पर उसने एक विचित्र गुफ़ा का हाल सुना जहां पर भगवान बुद्धदेव ने एक राक्षस को मन्त्र दिया था। उस समय यह बात प्रसिद्ध थी कि मन्त्र देने के उपरान्त बुद्ध ने इस नये शिष्य के पास अपनी छाया छोड़ जाने का वचन दिया था जिस में जब कभी उसका राक्षसी स्वभाव जागृत होवे, तब अपने गुरु की छायामूर्त्ति देख कर उसको अपने पूर्व सङ्कल्पों का स्मरण हो आवे। यह वचन पूरा हुआ और बुद्ध की छाया का दर्शन इस गुफ़ा में होने लगा। तभी से यह गुफ़ा एक तीर्थस्थान हो गई और चारों ओर से लोग यहां आने लगे। हुएन-संग इस स्थान को देखने के लिए बहुत आकुल हुआ; पर उसने लोगों से सुना कि उस गुफ़ा का मार्ग बड़ा ही भयानक है; लुटेरों का वहां सदा भय रहता है। किसी किसी ने यह भी कहा कि तीन बर्ष से जो यात्री उस गुफ़ा में गया वह फिर नहीं लौटा। इन सब बातों को सुन कर हमारे धर्म्मवीर यात्री ने ये भक्तिनिर्भर वाक्य कहे—"लक्ष कल्प में भी भगवान बुद्ध को प्रत्यक्ष छाया का दर्शन

पाना दुर्लभ है। मैं कैसे इतनी दूर आकर बिना उसकी पूजा किये हुए चला जाऊं"। उसने अपने साथियों को तो छोड़ दिया और मार्ग-प्रदर्शक की खोज में लगा. ढूँढ़ते ढूँढ़ते उसको एक लड़का मिला जो उसे पास के एक खेत में ले गया। यह खेत एक मठ के निकट था। यहां पर उसे एक वृद्ध पण्डा मिला जो गुफ़ा तक उसके साथ चलने के लिए तैय्यार हो गया। ये लोग थोड़ी ही दूर गये होंगे कि पाँच लुटेरों ने इन पर आक्रमण किया। सन्यासी ने अपना रंगीन वस्त्र दिखलाया।

एक लुटेरे ने पूछा—"स्वामी! आप कहां जाते हैं?"

हुएन-संग ने उत्तर दिया—"मैं बुद्धदेव की छाया को आराधना करने की कामना रखता हूं"।

लुटेरे ने फिर कहा—"स्वामी! क्या आप ने नहीं सुना है कि यह रास्ता लुटेरों से भरा हुआ है?"

हुएन-संग ने गंभीरता से उत्तर दिया—"लुटेरे भी मनुष्य हैं। इस समय, जब मैं बुद्ध की छाया की पूजा के निमित्त जाता हूं तब, यदि मार्ग हिंस्रक जन्तुओं से भी पूर्ण हो तो भी मुझे निर्भय चला जाना चाहिए। निश्चय मुझको तुमसे न डरना चाहिए; क्योंकि तुम मनुष्य हो; तुम्हारे चित्त में कुछ भी तो दया होगी"।

लुटेरों की आँख इस बात से खुल गई और उन्हों-ने उसी दिन से सन्मार्ग पकड़ा। [असम्पूर्ण।

रामचन्द्र शुक्ल।

भारतवर्षीय साहित्य और सभ्यता की प्राचीनता।

गत नवम्बर महीने में डाकृर थीबो साहब ने इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कालेज में पूर्वोक्त विषय पर एक वक्तृता दी थी। अवसर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वार्षिक अधिवेशन का था, और श्रोता नये बी० ए०, यम० ए० परीक्षा पास किये हुए कालेज में पढ़नेवाले थे। समूची वक्तृता का अविकल अनुवाद यहां देना सम्भव नहीं है! केवल उसका सारांश लिखकर पाठकों को उस उत्तम विषय का हम परिचय दिलाते हैं

अङ्गरेज़ी स्कूलों में पढ़ने के समय सब लोग भारतवर्ष का इतिहास कुछ न कुछ पढ़ लेते हैं। उन इतिहासों में मुसलमान बादशाह और अङ्गरेज़ गवरनर जेनरलों के समय की सब बातें वर्षानुक्रम से लिखी रहती हैं। पर हिन्दुओं के राजत्व काल की घटनाओं का समय वर्षानुक्रम से केवल बौद्ध मत के प्रचार के उपरान्त से, अर्थात् ५०० बी० सी०* से, दिया रहता है। बौद्धमत के प्रचार के पहले की घटनायें अनिश्चित रूप से सैकड़ों वा हज़ारों वर्षों की किसी अवधि के अन्दर घटित हुई सी दिखलाई रहती हैं। उन अवधियों में सबसे प्राचीन "वैदिक काल" कहा जाता है, जिसमें ऋग्वेद की संहिता आदि अति प्राचीन ग्रन्थ निर्मित हुए थे। थीबो साहब ने अपने श्रोताओं का ध्यान इस ओर लाकर पूछा, कि विचारिये तो कि उस वैदिक काल की सामयिक सीमा क्या है? कोई उसे २००० बी० सी० में बतलाते हैं; कोई २००० बी० सी० से लेकर १४०० बी० सी० तक कहते हैं; तीसरे १५०० बी० सी० से १००० बी० सी० तक मानते हैं; चौथे २८०० बी० सी० से १८०० बी० सी० तक लिखते हैं; और एक ऐसे भी हैं जो ४५०० बी० सी० से लेकर २५०० बी० सी० तक वैदिककाल का रहना प्रमाणित करते हैं। अब देखना चाहिये कि इस प्रकार समय निश्चय किये जाने का कारण क्या है।

थीबो साहब ने कहा कि यूनान के प्रसिद्ध दिग्विजयी सिकन्दर का एक प्रधान सेनापति सिल्यूकस अपने स्वामी के मरने पर बैक्ट्रिया देश का राजा हुआ था। उसका एलची मेगास्थनीज़ कुछ काल तक मगध देश के बौद्धमतावलम्बी राजा चन्द्रगुप्त के दरबार में आकर रहा था इस कारण

---

* आजकल जो अङ्गरेज़ी सन् १९०४ है वह ए० डी० कहलाता है। ए० डी० की गणना हज़रत ईसा मसीह को ५ वर्ष की अवस्था से की जाती है। ए० डी० के पूर्व काल की गणना को बी० सी० लिखते हैं। इस प्रकार ईसामसीह का जन्म ५ बी० सी० में हुआ था।

मेगास्थनीज़ के लेखों द्वारा हम लोग निश्चय करके जानते हैं, कि सन् ३२१ बी० सी० में चन्द्रगुप्त राजा हुआ था। और चन्द्रगुप्त के पोते अशोक के निर्मित शिलालेखों द्वारा जाना जाता है कि अशोक और सिल्यूकस का पोता ऐण्टिओकस दोनो समकाली न थे। इन दोनो निश्चित बातों से और बौद्धमत के प्राचीन ग्रन्थों की सहायता से निश्चय किया जा सकता है, कि स्वयं बुद्धदेव सन् ५०० बी० सी० के आस पास हुए थे। पर बुद्धदेव के पूर्वकाल की कोई घटना का समय इस प्रकार निश्चय नहीं किया जा सकता है। भारतवर्ष का प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ कोई भी नहीं है। महाभारत और पुराण सब इतने अधूरे हैं और उनमें आभ्यन्तरिक विरोध इतना अधिक है कि उनको ऐतिहासिक प्रमाण मानना उचित नहीं। बौद्धमत के ग्रन्थ, शिलालेख अथवा ताम्रपत्राङ्कित लेख, और प्राचीन राजाओं के सिक्कों से, किसी प्राचीन घटना की ऐतिहासिक निश्चयता नहीं हो सकती है। पर यह निश्चयता हो सकती है केवल वैदिक साहित्य से उस साहित्य को भली भांति पढ़ने से और यह अनुमान करने से कि वैसे सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य के आरम्भ से लेकर परिपूर्ण होने तक, कितना काल लगा होगा। इसी तरह अनुमान करके विख्यात प्राफ़ेसर मैक्समूलर ने पहले पहल सन् १८५९ ई० में संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखकर प्रकाशित किया था और इन्हींके नियमों का अनुकरण अन्य विद्वानो ने भी किया है।

सब वेदों में ऋग्वेद प्राचीन है। इसमें तीन खण्ड हैं (१) मंत्र (२) ब्राह्मण और (३) उपनिषद्। इन तीनो खण्डों के विषय, भाव और शब्द तथा इनके द्वारा लक्षित देशका विचार करने से मालूम होता है कि मंत्र-भाग सब से पुराना है। ब्राह्मण भाग उसके पीछे बना है, और उपनिषद् सबसे पीछे। वेद की उत्पत्ति और काल के विषय में हिन्दुओं का विश्वास कुछ और ही है: पर थीबो साहब उसका खण्डन अथवा मण्डन न करके, केवल योरोपीय विद्वानों की सी समालोचक दृष्टि से देख कर, और पूर्वोक्त प्रोफ़ेसर मैक्समूलर का अनुकरण करके, कहते हैं कि, आर्य लोग अफ़ग़ानिस्तान के पूर्व भाग में, अथवा पञ्जाब में जिस समय वास करते थे उस समय, मन्त्र-भाग बना। और जब गंगा यमुना के मध्यस्थ देश में वे आबसे तब ब्राह्मण भाग बना। प्रायः सम्पूर्ण उपनिषद् भाग को वे बौद्ध मत के प्रचार के पश्चात् का बतलाते हैं। यह विचार कर कि इन खण्डों के विषय, भाव, शब्द और देश के परिवर्त्तन होने में कितना समय लगा होगा, और कितने समय में इन सबके द्वारा बौद्ध मत की उत्पत्ति हो सकी होगी मैक्समूलर साहब लिखते हैं, कि ८०० बी०सी० में ब्राह्मण, और १२०० बी०सी० में संहिता, अर्थात् मन्त्र भाग, बना होगा। जिस रीति से ये समय निश्चय किये गये थे उस रीति का समर्थन पाश्चात्य सब विद्वान् करते हैं; परन्तु समय निश्चय करने में मतभेद हो गया है। स्वयं मैक्समूलर ने संहिता का समय पीछे से १५०० बी०सी० लिखा है; अमेरिका के प्रोफ़ेसर ह्विटनी ने २००० बी० सी० से १५०० बी० सी० लिखा है; और जर्मनी के प्रोफ़ेसर हैाग ने २४०० बी० सी० निश्चय किया है। थीबो साहब इस अन्तिम समय के पक्ष पाती हैं। वे कहते हैं कि वेद ऐतिहासिक घटनाओं और आर्यों के दैनिक कर्म्म, धर्म्म तथा सभ्यता के चित्रों से भरा है। जैसे राजा सुदास का दस राजाओं के साथ घोर युद्ध सतलज के किनारे होना ऋग्वेद संहिता के सातवें मण्डल में लिखा है। पर यह निश्चय करना कठिन है कि यह लड़ाई कब हुई थी।

वैदिक समय निरूपण करने में यहां तक थीबो साहब ने वेद के आभ्यन्तरिक प्रमाणों पर अवलम्ब किया। आगे यह बाहरी प्रमाणों की देख भाल करने लगे।

ज्योतिष शास्त्र से कुछ भी परिचय रखनेवाले लोग भली भांति जानते हैं कि बहुत सी खगोलि

घटनाओं में समयान्तर हुआ करता है, अर्थात् जो घटना इस वर्ष आज हुई है, वह थोड़े काल के बाद कल होगी। वर्ष भर में हेमन्त संक्रमण का स्थान, जब दिन सब से छोटा होता है, एक वैसी ही घटना है। यदि किसी वर्ष हेमन्त-संक्रमण के दिन सूर्य वृष राशि के मध्यस्थ हो तो २१६० वर्षों के बाद उसी दिन सूर्य मेष राशि के मध्यस्थ रहेगा। यह बात सब प्रकार निश्चय की हुई है और अनेक देशों के प्राचीन ग्रन्थों में हेमन्त संक्रमण के दिन का सूर्य-स्थान लिखा हुआ है। उस स्थान को आज कल के उसी दिन के सूर्य के स्थान से मिला कर हिसाब करने से उक्त ग्रन्थों का समय ठीक ठीक मालूम हो सकता है। इस तरह का कुछ प्रमाण हम लोग वैदिक काल का भी पाते हैं।

ज्योतिष-वेदाङ्ग एक अति प्राचीन ग्रन्थ है। यह वेद का एक अंग समझा जाता है; वेद का पूर्ण ज्ञान होने में इस से बड़ी सहायता मिलती है; और सूत्रों के निर्माण काल में इसका बनना माना गया है। इसमें ज्योतिष शास्त्र सम्बन्धीय ऐसे छोटे छोटे, पर पुष्ट नियम, हैं कि उनकी सहायता से एक प्रकार का पञ्चाङ्ग बनाया जा सकता है। इस में लिखा है कि वर्षारम्भ माघ की अमावास्या को होता है, उस दिन हेमन्तसंक्रमण का सब से छोटा दिन होता है, और सूर्य श्रविष्ठा नक्षत्र के प्रारम्भ में रहता है। संक्रमण का स्थान ७२ वर्षों में एक अंश पीछे हट जाता है और "श्रविष्ठा के आरम्भ" का अर्थ सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थों से मिल सकता है। इस प्रकार हिसाब करने से ज्योतिष वेदाङ्ग की लिखी घटना का समय ११०० बी० सी० निश्चय किया जाता है। कौशीतकी ब्राह्मण में भी लिखा है कि सूर्य जब उत्तर की यात्रा का आरम्भ करता है तब माघ की अमावस्या को कुछ काल तक अवकाश लेता है। इस वाक्य से मालूम होता है कि हेमन्तसंक्रमण के सबसे छोटे दिन को सूर्य का श्रविष्ठा के आरम्भ में रहना कौशीतकी ब्राह्मण के कर्त्ताओं ने भी देखा था, जिससे कौशीतकी ब्राह्मण का समय १२०० बी० सी० निश्चय हुआ। इस प्रकार ज्योतिष वेदाङ्ग और कौशीतकी ब्राह्मण दोनों सहमत हुए।

पहले लिखे हुए प्रमाणों से और इस समय-निरूपण से निश्चय किया जा सकता है कि ब्राह्मणों का समय १२०० बी सी० से लेकर १००० बी० सी० तक है और संहिता का समय १८०० बी० सी०।

इससे अधिक निश्चयता से कोई समय स्थिर नहीं किया जा सकता है। परन्तु प्रायः दस वर्ष हुए जर्मनी के एक प्रधान संस्कृतज्ञ, प्रोफ़ेसर जेकौबो, ने और पूना के विख्यात पण्डित बाल गङ्गाधर तिलक ने ब्राह्मणों के कई वाक्यों का प्रमाण देकर निश्चय किया है कि उन ग्रन्थों में लिखे हुए संक्रमण ११०० बी० सी० से बहुत पहले हुए। प्रोफ़ेसर जैकौबी ४५०० बी० सी० कहते हैं; और पण्डित तिलक ६००० बी० सी० लिखते हैं; यद्यपि इन दोनों महाशयों ने प्रमाण में ब्राह्मणों के एक ही वाक्यों को माना है। ऊपर ही कह चुके हैं कि वैदिक साहित्य में एक वाक्य भी ऐसा स्पष्ट और एकार्थक नहीं है जिससे हेमन्त और ग्रीष्म संक्रमण के सूर्य का स्थान निर्विवाद निश्चय किया जा सके। पर ज्योतिष-वेदाङ्ग को सहायता से ब्राह्मण भाग के वाक्यों का अर्थ लगाने से उन दिनों के सूर्य का स्थान निश्चय किया जा सकता है। और इसी प्रकार अर्थ लगाकर प्रोफ़ेसर जेकोबी और तिलक ने वैदिक काल को इतना पुराना माना है। उदाहरण के लिए उनका एक प्रमाण सुनिये। ब्राह्मणों में अनेक जगह लिखा है कि सोमयज्ञ फाल्गुन की पूर्णिमा को आरम्भ होना चाहिये। फाल्गुन की पूर्णिमा को चन्द्रमा सदा फल्गुनी नक्षत्र में अथवा उसके अति समीप रहता है और हिन्दुओं के यहां प्राचीनकाल से चन्द्रमास का मिलाव सौर मास के साथ रहने के कारण प्रतिवर्ष प्रत्येक पूर्णिमा अपनी ही अपनी ऋतु में हुआ करती है। ऐसे ही चैत्र की पूर्णिमा चित्रा नक्षत्र में, और वसन्त ऋतु में, सदा सर्वदा होती आई है। पूर्णिमा को सूर्य चन्द्रमा से १८००

अंश की दूरी पर रहता है; इस कारण यदि निश्चय कर मालूम हो जाय कि ब्राह्मणों के समय में फाल्गुन की पूर्णिमा किस ऋतु में हुई थी, और उस ऋतु में आजकल सूर्य कहां रहते हैं, तो हिसाब करके ठीक बतलाया जा सकता है कि ब्राह्मण भाग का समय कब था। प्रोफ़ेसर जैकोबी और पण्डित तिलक कहते हैं कि यज्ञारम्भकाल (फाल्गुन की पूर्णिमा) जाड़े के सबसे छोटे दिन को पड़ता था; और थीबो साहब कहते हैं कि, नहीं, वसन्त ऋतु के आरम्भ में यज्ञारम्भ होता था। यदि तिलक की राय ठीक है तो ब्राह्मणों का काल ४५०० बी० सी० होगा; पर यदि थीबो साहब ठीक कहते हैं, तो ११०० बी० सी० मानना पड़ेगा। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का अति सूक्ष्म दृष्टि से समालोचन करने से इन दोनों मतो की मीमांसा हो सकेगी।

तिलक ने अपने मत के समर्थन में लिखा है कि मिस्टर बी० बी० केलकरने तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक वचन द्वारा सिद्ध किया है कि ४६५० बी० सी० में वृहस्पति ग्रह की एक विशेष दशा देखी गई थी। तैत्तिरीय ब्राह्मण का वचन यह है "वृहस्पतिः प्रथमं जायमानः तिष्यं नक्षत्रं अभिसम्बभूव" जिससे वह यह अर्थ लेते हैं कि वृहस्पति से तिष्य नक्षत्र का ग्रहण हुआ। थीबो साहब इस अर्थ को नहीं मानते और कहते हैं कि इससे केवल इतना हीं सूचित होता है, कि वृहस्पति का जन्म तिष्य नक्षत्र में हुआ; और तिष्य के देवता वृहस्पति हैं भी।

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर ने सबसे पहले लिखा था कि आर्य लोग मध्य एशिया में रहते थे और वहीं से चलकर जब वे पञ्जाब में जा बसे तब ऋग्वेद बना। इसी सिद्धान्त पर विश्वास करके उन्होंने वैदिक समय पहले ११०० बी० सी० में माना था। तिलक महाशय इसके विरुद्ध कहते हैं, कि आर्य लोग मध्य एशिया से भी आगे उत्तरी ध्रुव के समीप वास करते थे, और वहीं ऋग्वेद बना। मैक्समूलर की तरह तिलक भी अपने सिद्धान्त के समर्थन में ऋग्वेद और अन्यान्य प्राचीन ग्रन्थों की सहायता लेते हैं। थीबो साहब तिलक की राय के विरोधी और मैक्समूलर की राय के प[क्ष]पाती हैं। पर उन्होंने कहा कि मिस्टर तिलक की युक्ति इतनी बड़ी विद्वत्ता पर अवलम्बित है कि उसका खण्डन इस सभागृह में नहीं हो सकता।

आगे बौद्धमत तथा जैन मतके ग्रन्थो से अप[ने] सिद्धान्त का समर्थन करके थीबो साहब ने क[हा] कि वैदिक साहित्य और वैदिक काल २००० बी० सी० से पहले का नहीं है। किन्तु अभी कोई न[हीं] कह सकता है कि वेद से वैदिक काल का ऐति[]हासिक ज्ञान अब और नहीं हो सकता है; क्योंकि हाल ही में जर्मनी के प्रोफ़ेसर हिलीब्रैन्ट साहब [ने] एक नई बात निकाली है, कि वेद में लिखे दा[स] और पति लोगों को राक्षस जाति विशेष समझ[ना] उचित नहीं। ये मनुष्य थे, और इन्हीं लोगों को यूना[नी] इतिहास लेखकों ने दोई और परनोई जाति कह[कर] लिखा है; और वैदिक सरस्वती नदी को भारत[]वर्षीय वर्त्तमान सरस्वती नदी समझना उचि[त] नहीं। वैदिक सरस्वती पश्चिम अफ़गानिस्तान क[ी] नदी है, जो वैदिक काल में सरस्वती पारसियों [के] धर्म्मग्रन्थों में हरहवैती और आज कल हारूत [के] नाम से प्रसिद्ध है। इस लिए थीबो साहब ने अप[ने] श्रोताओं से कहा कि वैदिक काल का इतिहास नह[ीं] है सही,—पर सम्पूर्ण वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों का अन्वेषण करने से, कोशाम्[बी] कम्पिला, मिथिला, राजगृह, साकेत आदि प्राची[न] ग्रन्थो में लिखित स्थानो की बुनियाद खोदने से और प्राचीन राजभवन, मन्दिर, ताम्रपत्र अथवा शिलालेख और सिक्कों के निकलने से वैदिककाल का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है।

भारतवर्ष में बड़े बड़े मकान प्राचीनकाल में बहुत कम बनते थे और जो बनते भी थे उनमें लकड़ी अधिक लगाई जाती थी, जिससे वे मकान थोड़े ही काल में नष्ट हो जाते थे। हिन्दू लोग मूर्ति बनाते थे, पर ऐतिहासिक घटनाओं की मूर्तियां (जैसे लड़ाई की) नहीं बनाते थे। इस कारण प्राची[न]

मकान और मूर्तियों से वैदिक काल का इतिहास मिलने की आशा थीबो साहब को बहुत कम है। ताम्रपत्र अथवा शिलालेखों से भी सच्चा इतिहास मिलना उन्हें सम्भव नहीं मालूम होता है; क्योंकि वह कहते हैं कि ७०० अथवा ८०० बी०सी० में आर्यों ने बेबीलोन देश से आये हुए लोगों से अक्षर लिखने की विद्या सीखी थी। इसी कारण भारतवर्ष की प्राचीन वर्णमाला उस समय की सेमिटिक वर्णमाला से मिलती जुलती है। पर वेद वर्णमाला से पहले का है। इसलिए वैदिक साहित्य से सहायता मिलेगी; ताम्रपत्रों से नहीं।

भारतवर्षीय साहित्य और सभ्यता की प्राचीनता की आलोचना तो थीबो साहब ने इतनी ही की, पर आगे यहां की ऐतिहासिक सामग्री की तुलना उन्होंने अन्य प्राचीन-सभ्यता-प्राप्त देश यूनान, मिसर, आसीरिया तथा बेबीलैान की सामग्री से की। थीबो साहब ने कहा कि चाहे अन्य विषयों में उन देशों की सभ्यता वैसी उच्च श्रेणी की न रही हो; परन्तु ऐतिहासिक ज्ञान उन देशवालों को बहुत पहले हुआ। यूनान का सच्चा इतिहास ५०० बी०सी० से मैाजूद है। इस इतिहास को, तथा यूनान का गद्य काव्य, जो २०० बी०सी० का है, उसको और वहां के प्राचीन मकानों के खंडहर, दस्तकारी आदि को देखने से यूनान का इतिहास १००० बी०सी० से सम्भव माना जाता है। यूनान तथा यूनान के पास एशिया माइनर में खोदने से हाल में पृथ्वी के नीचे से जो ताम्रपत्र, सोने के पियाले, स्त्रियों के अलङ्कार इत्यादि निकले हैं उनसे यूनान की ऐतिहासिक अवधि १६०० से १२०० बी०सी० से प्रारम्भ की जा सकती है।

मिसर देश का प्राचीन इतिहास इससे भी प्राचीन है। यहां के राजाओं की नामावली ऐतिहासिक क्रमानुसार लिखी हुई है, और बड़े बड़े मकानों तथा शिलालेखों से उनका रहना प्रमाणित होता है। सबसे पहला ऐतिहासिक राजा मिनिस ४००० बी०सी० में हुआ, और ३००० बी०सी० में राजाओं का चौथा वंश आरम्भ हुआ जिसने गिज़े के तीन सबसे बड़े पिरामिडों को* बनवाया। २००० बी०सी० में मिसर का साहित्य बड़े गौरव को प्राप्त हुआ था; और मिसर की सबसे उत्तम दस्तकारी १६०० बी०सी० की बनी हुई है। १२५० बी०सी० में दूसरा थटमोसिस राजा था, जिसने सोरियावालों से चौदह बार लड़ाई की थी। उन चौदहों लड़ाइयों का वर्णन विस्तारपूर्वक मैाजूद है।

बेबीलोन का सबसे पहला ऐतिहासिक राजा पहिला सारगन ३८०० बी०सी० में हुआ। उसके बाद ऐतिहासिक राजाओं की नामावली २४०० बी०सी० से आरम्भ होकर ६२५ बी०सी० तक है। परन्तु हाल में पुराने डीहों को खोदने से जो मन्दिर, मूर्तियां, ईंटें, वग़ैरह निकली हैं उनसे उस स्थान के राजाओं का समय ४००० बी०बी० से भी पुराना प्रमाणित होता है। उस तरह की सभ्यता प्राप्त करने से भी घट से घट १००० वर्ष लगे होंगे। इस कारण बेबीलोन की सभ्यता ५००० बी०सी० से भी पहले की समझनी चाहिए। ४००० बी०सी० में लिखने की विद्या बेबीलोन में जारी थी; और उस समय से उस विद्या की बराबर उन्नति होती आई।

थीबो साहब ने स्वीकार किया कि अन्य देशों की सभ्यता पुरानी रहने पर भी धार्म्मिक उन्नति की शृङ्खला के आरम्भ के लिये ऋग्वेद के मन्त्रों से उत्तम कोई ग्रन्थ नहीं है; और बौद्ध मत के सांख्य तथा धर्म्म ज्ञान के सामने प्राचीन मिसर और बेबीलोन की पादड़ी-मण्डी की सब शिक्षा तुच्छ है। साथ ही इसके उन्होंने यह भी कहा कि आज कल लोग अक्सर कहते हैं, कि सब विद्या और सब बुद्धि की जड़ भारतवर्ष है; यहीं से

---

* पिरामिड पहलदार कृत्रिम पहाड़ हैं, बल्कि बड़े बड़े पिरामिड बहुत से पहाड़ों से भी ऊंचे हैं। ये पत्थर के बड़े बड़े खण्डों को जोड़ कर बनाये गये थे। राजाओं के मृत शरीर को अमूल्य मसाले से भरकर इन पिरामिडों में रखने का व्यवहार प्राचीन मिसर के वासियों में था।

लिखने की विद्या आरम्भ हुई; यहीं से ज्योतिष-शास्त्र निकला। यह बात सच हो, चाहे न हो, पर ऐसे कहनेवालों को पहले चाहिए कि अन्य प्राचीन देशों का इतिहास देखलें; प्राचीन पदार्थों से अर्थ निकालना सीखें; अन्य देशों के ताम्रपत्र, अङ्कित प्रस्तर और टूटे फूटे मन्दिरों का अन्वेषण करलें; तब ऐसी बात कहें। हम ने जो कुछ आज कहा है उतना ही इस विषय पर कहा नहीं जा सकता है; और इस विषय के जितने अङ्गों का हम ने नाम लिया है, उतने ही अंश इसके नहीं हैं। पर हमने जितना कहा है उससे आप लोगों को इस विषय का अन्वेषण पक्षपात छोड़ कर करने का उत्साह करना चाहिए।

थीबो साहब की वक्तृता इतने ही में समाप्त हुई; पर वह इस विषय पर एक स्वतन्त्र पुस्तक छपवाने वाले हैं। भुवनेश्वर मिश्र।

पुस्तक परीक्षा।

कौतुकमाला और बोधवचन। २६६ पृष्ठ की पुस्तक। विलायती कपड़े की सुन्दर जिल्द; उस पर सुनहरी अक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य १।) लींबड़ी, काठियावाड़, में पुस्तककर्ता श्रीयुक्त गणेश जी जेठा भाई से प्राप्तव्य। यह पुस्तक मूल गुजराती में है, उसीका यह हिन्दी अनुवाद है। गुजरातियों का ध्यान हिन्दी की ओर जाना, हिन्दी को देशव्यापक भाषा बनाने का सोपान है। पुस्तक में १०० से अधिक कौतुकवर्द्धक और हास्योत्पादक आख्यायिकायें हैं। कोई कोई आख्यायिका बहुत ही चुटीली है; उसे पढ़कर हँसी नहीं रुकती। प्रत्येक आख्यायिका से कुछ न कुछ शिक्षा भी मिलती है; यह बात आख्यायिका के अन्त में लिख भी दी गई है। इस पुस्तक की उपयोगिता का विचार करके बम्बई के विद्या-विभाग ने इसे, इनाम और पुस्तकालयों के लिए, लेना मंज़र किया है। यद्यपि भाषा-सम्बन्धी इस में दोष हैं तथापि काठियावाड़ में ऐसी भी हिन्दी का लिखा जाना प्रशंसा की बात है। यदि गणेशजी महाशय का अनुकरण महाराष्ट्र और बङ्गदेश के भी दो एक सज्जन करें, और हिन्दी में पुस्तक रचना आरम्भ कर दें, तो इस भाषा की देशव्यापकता का अल्पाधिक आरम्भ हो जाय। ईश्वर करै शीघ्र ही ऐसा हो!

परमा पद्य प्रकाश। शेख़ सादी की करीमा का पद्यात्मक अनुवाद। आरा के पण्डित परमानन्द कृत। मूल्य ४ आना। इस के कर्ता संस्कृतज्ञ हैं। सिद्धिनाथप्रशस्ति और शोकविंशति आदि उन की संस्कृत कवितायें भी इस पुस्तक के अन्त में छपी हैं। हिन्दी कविता से संस्कृत कविता अधिक सरस है। एक संस्कृतज्ञ पण्डित के द्वारा फ़ारसी की पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद होना विशेषता और विलक्षणता से ख़ाली नहीं है। पण्डित जी की हिन्दी कविता बुरी नहीं है; परन्तु "अहहुँबद्ध हम विवश अति" इत्यादि रचना विचारणीय है।

कवि-समाज की रिपोर्ट। कालाकांकर में श्री युक्त राजा रामपाल सिंह ने एक कवि-समाज बना रक्खा है। उस में, समय समय पर, समस्याओं की पूर्तियां होती हैं। पहले वर्ष, अर्थात् १८९७ ई० में, जितनी पूर्तियां हुई हैं उन्हीं का इस रिपोर्ट में संग्रह है। समस्या-पूरक कवियों में कालाकांकर के भी कवि हैं और बाहर के भी। स्वयं राजा साहब समस्याओं की पूर्तियां करते हैं; उनकी विद्याभिरुचि और उन का हिन्दी से प्रेम हिन्दीभाषा भाषी तअल्लुकेदारों के अनुकरण करने योग्य है। इस रिपोर्ट में अनेक प्रकार से, अनेक विषयों का आश्रय ले कर, पूर्तियां की गई हैं; और कोई कोई पूर्तियां बहुत अच्छी हुई हैं। यह पुस्तक ।) में मन्त्री, कवि-समाज, कालाकांकर से मिलती है।

भौगोलिक परिभाषा। नागरीप्रचारिणी सभा वैज्ञानिक कोश बना रही है। यह काम बहुत दिनों से हो रहा है। अच्छी बात है। सभा के सभी काम तारीफ़ के लायक़ होते हैं। हिन्दी जाननेवाले सभा का बड़ा गौरव करते हैं। और यह है भी गौरव

करने याेग्य । विज्ञानसम्बन्धिनी भिन्न भिन्न ७ परिभाषायें सभा ने बनवाई हैं। बड़े बड़े विद्वानों की एक कमिटी ने उनका संशोधन किया है। अब उनका प्रचार भर होना बाक़ी है। पहली परिभाषा का नाम है "भैागोलिक परिभाषा" ग्रैार दूसरी का "ज्यौतिषिक परिभाषा"। इन दोनों का संशोधित संस्करण निकल आया। २२ जून को इनका प्रकाश ग्रैार प्रचार हो गया। शेष का प्रचार होना बाक़ी है। इन दोनों परिभाषाओं की एक एक कापी सभा ने कृपा करके हमको भी भेजी है।

इनमें से पहली, अर्थात् भैागोलिक, परिभाषा के विषय में हम कुछ कहना चाहते हैं। इसके बनाने ग्रैार इसका सम्पादन करनेवाले महाशयों के नाम ये हैं—

बनानेवाले—बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०
जनरल एडिटर—बाबू ठाकुरप्रसाद

जाइण्ट एडिटर—
बाबू भगवानदास, एम० ए०
बाबू भगवतीसहाय, एम. ए. ब्री. एल
बाबू दुर्गाप्रसाद, बी० ए०
लाला खुशीराम, एम० ए०
प्रोफ़ेसर एन० बी० रानडे, बी० ए०
एम० एम० पं० सुधाकर द्विवेदी
बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०
पण्डित विनायक राव

इस परिभाषा के शब्दों की युक्तता ग्रैार अयुक्तता के विषय में कुछ कहना हमारे समान तुच्छ जन के लिए पागलपन होगा; क्योंकि उन शब्दों को अङ्गरेज़ी, संस्कृत ग्रैार विज्ञान के आठ आठ दस दस आचार्य्यों ने मिल कर गढ़ा है। ये सब शब्द 'पास' हो चुके। अतएव इस विषय में अब कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रही। परन्तु इन दो परिभाषाओं में इमला तक की अनेक ग़लतियां रह गई हैं; प्रूफ़ भी इनका सावधानता से नहीं पढ़ा गया। यह बड़े अफ़सोस की बात है। जिस वैज्ञानिक कोश के लिए इतने दिनों से इतना परिश्रम ग्रैार प्रयत्न इत्यादि हो रहा है, उनके सम्पादन में इतनी बेपरवाही! दोनों परिभाषाओं की सब त्रुटियां बतलाने के लिए हमारे पास स्थान नहीं है। इस लिए हम सिर्फ़ भूगोलसम्बन्धिनी पहली परिभाषा की इमला वग़ैरह की कुछ, सब नहीं, ग़लतियां दिखलाते हैं—

	जैसा छपा है।	जैसा शुद्ध मालूम होता है।
Animal Kingdom	= प्राणी वर्ग	प्राणि-वर्ग
Aqueous Vapour	= जल-वाष्प	जल-बाष्प
Boundary	= हद्	हद
Crystal	= स्फटकि	स्फटिक
Equinoctial point	= क्रान्तिपात्त	क्रान्तिपात
Equinox Vernal	= बसन्त-संपात	वसन्त-सम्पात
Evaporation	= वाष्पी भवन, वाष्पी भाव	वाष्पीभवन, वाष्पीभाव
Rarified	= बिरल	विरल

इनमें से कुछ त्रुटियां तो सावधानी से प्रूफ़ के न पढ़ने से हुई हैं; पर कुछ का कारण यह नहीं जान पड़ता। यदि ब ग्रैार व में भेद न होता तो इन दो वर्णों की आवश्यकता ही क्या थी? एक ही से काम न निकल जाता। 'वाष्पी भवन' शब्द के दो टुकड़े करके 'वाष्पी' को अलग ग्रैार 'भवन' को अलग रखना बहुत ही बुरा मालूम होता है।

सभा ने नियम किया है कि ठीक ठीक उच्चारण होने के लिए कुछ वर्णों के नीचे विन्दु लगाना चाहिए। परन्तु इस १७ पन्ने की छोटी सी पुस्तक में इस नियम का भी सब कहीं पालन नहीं हुआ। रक़बा की जगह रकबा ग्रैार क़सबा की जगह कसबा वग़ैरह छपा हुआ है।

Sounding line का अर्थ लिखा गया है 'थाह मापक सूत्र'। इसमें 'थाह' प्राकृत ग्रैार 'मापक' संस्कृत! इस तरह का समास, हमने सुना था, नहीं होता।

विराम चिन्ह तक इस परिभाषा की पुस्तक में सावधानता से नहीं लगाये। देखिए—

Heat=गरमी, उष्णता, ताप, तेज,।

North-West=वायु कोण पश्चिमोत्तर।

Spring=सोता, झरना, वसंत ऋतु।

यहां पर 'तेज' के आगे एक कामा अधिक है। वही 'कोण' के आगे कम है। Spring के अर्थ में तीन शब्द लिखे गये हैं। उन में से पहले दो समानार्थक हैं; अन्त का तीसरा शब्द भिन्नार्थक है। परन्तु तीनों शब्द सिर्फ़ कामा देकर अलग दिखाये गये हैं; जैसे तीनों समानार्थक हों। हमारी मन्द बुद्धि के अनुसार झरना के आगे या तो एक स्यमीकोलन होना चाहिए था या पूर्णविराम।

Full moon का अर्थ किया गया है—पूर्णचन्द्र, पूर्णिमा। यहां पर पूर्णिमा किस हिसाब से रक्खा गया है, समझ में नहीं आता। जिस रात को पूरा चन्द्रमा उदय होता है, उस रात के अर्थ में 'पूर्णिमा' शब्द का प्रयोग होता है; ख़ुद पूरे चन्द्रमा के अर्थ में नहीं होता।

Monsoon (मॅनसून) का अर्थ लिखा गया है—मानसून, मैासमी हवा। पादरी केव्यन साहब ने भी अपनी रायल स्कूल डिक्शनरी में इस शब्द का अर्थ 'मैासमी हवा' लिखा है। क्या उसी से यह अर्थ लिया गया है? पर इस देश में यह हवा बरसाती मैासम को ही सूचक होती है; और किसी मैासम की नहीं। इस लिए यदि इस शब्द का अर्थ 'मैासमी हवा' की जगह 'बरसाती हवा' किया जाता जो शायद विशेष युक्त होता।

परन्तु हम यह क्या कर रहे हैं? पारिभाषिक शब्दों के तारतम्य पर कुछ कहना अब अनावश्यक है। शब्दों को तो सब-कमिटी और कमिटी ने 'पास' कर दिया; बहुत दिन हुए। इस लिए अब वे रक्खे ही जायगें।

परन्तु सभा के कार्यकर्त्ता सभ्यों और इस वैज्ञानिक कोश के माननीय सम्पादकों से हमारी प्रार्थना है कि शब्द-शुद्धि का वे अवश्य ख़याल रक्खें और प्रूफ़ सावधानी से पढ़ें, जिसमें अगली परिभाषाओं में ये दोष न रहें। इसी लिए हमने इन त्रुटियों की सूचना देना उचित समझा। सभा हमारी धृष्टता को दया करके क्षमा करै।

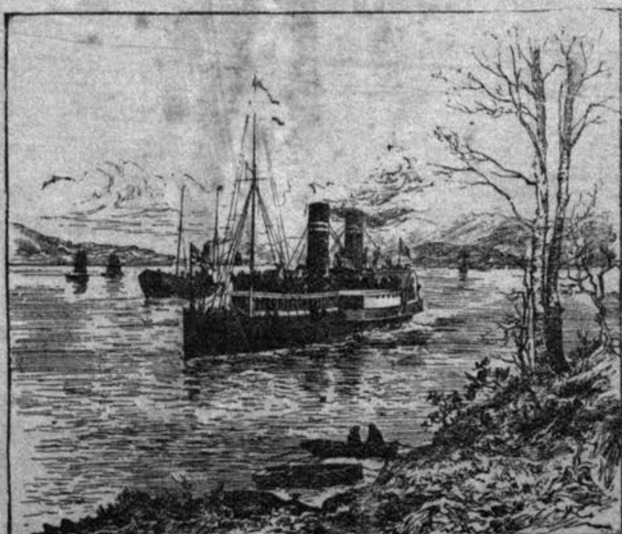

महाराज सवाई रामसिंहजी,
जी॰ सी॰ एस॰ आई॰ ।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

१९०४

भाग ५] अगस्त, १९०४ [संख्या ८

विविध विषय।

विलायत के डाक्टर दे ने इस देश की वैद्यक विद्या ग्रैार ग्रोषधियों के विषय में एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ का एक भाग निकल चुका है; दूसरा निकलनेवाला है। इसमें डाक्टर दे ने संस्कृत के ग्रनेक प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों का ज़िकर किया है; उनका काल निर्णय भी किया है; ग्रैार उन्हींकी सहायता से ग्रनन्त जड़ी बूटी ग्रैार रसायनों का वर्णन भी किया है। उन्हों-ने सिद्ध किया है कि भारतवर्ष में ग्रनेक धातु ग्रैार रसायनें हज़ारों वर्ष से ग्रोषधियों के काम ग्राती हैं। भारतवर्ष में उनका, इस प्रकार, उपयोग होने के सैकड़ों वर्ष पीछे योरपवालों ने उनके ग्रोष-धियों में प्रयोग करना सीखा है। डाक्टर साहब का मत है कि भारतवर्ष ही में सबसे पहले रसा-यन विद्या का प्रचार हुग्रा। यहां से यह विद्या ग्ररब ग्रैार ग्रीस देश में पहुँची। उसके पीछे योरप के ग्रैार ग्रैार देशों ने इसे सीखा। रसायन शास्त्र में संसार भर का गुरु होकर भी, इस समय, भारत-वर्ष योरप ग्रैार ग्रमेरिकावालों से बहुत पीछे पड़ा हुग्रा है। सब दिन बराबर नहीं जाते। जिस की वृद्धि होती है उसका ह्रास भी होता है। कालिदास ने कहा है—

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।

* *
*

सेण्टपोटर्सबर्ग के एक विद्वान ने पेड़ों को नीरोग ग्रैार ग्रधिक सशक्त करने के लिए एक यन्त्र बनाया है। जितने पेड़ हैं सब जड़ों से शक्ति-वर्द्धक वस्तुग्रों को खींचते हैं। जड़ें ही उनका मुँह हैं। जीवित रहने के लिए वे जड़ों ही के द्वारा इच्छित वस्तुग्रों को खाया करते हैं। परन्तु इस यन्त्र के बनानेवाले ने ऐसी युक्ति निकाली है कि वह ग्रपने यन्त्र के द्वारा पेड़ों के तने ग्रैार डालें में शक्तिवर्द्धक ग्रोषधियां प्रवेश करके पेड़ को शीघ्र ही बड़ा, मोटा ग्रैार बलिष्ट कर देता है। ग्रनेक

प्रकार के रोगों को भी, वह, इस यन्त्र के द्वारा ओष-धियां भीतर प्रवेश कराके, दूर कर देता है। उसने कालिफ़ोर्निया में फलों के कोई ८०० पेड़ों पर अपने यन्त्र का प्रयोग करके इन बातों को सिद्ध कर दिया है। इस प्रकार की ओषधि से पहले की अपेक्षा अधिक बड़े फल होने लगते हैं; उनका रङ्ग भी अच्छा हो जाता है; और उनमें किसी प्रकार का रोग नहीं होता।

***

आस्ट्रेलिया में एक बार इस बात की जांच हुई कि कितनी देर में पेड़ का अख़बार बन सकता है। इस लिए, सब प्रबन्ध ठीक करके, तत्काल एक पेड़ काटा गया; उसका छिलका निकाला गया; फिर उसके टुकड़े किये गये; कूट काट कर टुकड़ों का मलीदा बनाया गया; फिर उसका कागज़ बना; कागज़ कारख़ाने से छापाख़ाने में आया; वहां अख़बार की पहली कापी निकली। यह सब होने में केवल २ घण्टे २५ मिनिट लगे!

***

प्रति दिन नई नई कलें बनती जाती हैं। सैकड़ों काम जो पहले हाथ से होते थे अब कलों से होते हैं। इससे मेहनत कम पड़ती है; काम अधिक होता है; और समय भी कम लगता है। ऊपर एक विचित्र कल का ज़िकर किया गया है; उससे पेड़ों को पुष्टता पहुँचाई जाती है। अब एक और कल निकली है। उसे फारतहम के रहनेवाले जे० यच० नाइट नामक साहब ने बनाया है। उससे ईटें पाथी जाती हैं। उसे चलाने के लिए केवल दो आदमी और एक लड़का दरकार होता है। इस कल में एक घण्टे में कोई ६०० ईटें बनती हैं। अर्थात् यह कल पाँच छ आदमियों का काम करती है और बारह घण्टे में सात आठ हज़ार ईटें बना डालती है। इसकी ईटें सब प्रकार की इमारतों में काम आती हैं। हाथ की बनाई ईटों की अपेक्षा ये ईटें अधिक मज़बूत होती हैं।

महाराज सवाई रामसिंहजी, जी० सी० एस० आई०

पाठकवृन्द, आज आपको कछवाहा-कुल-तिलक भूतपूर्व श्रीमहाराज रामसिंह जो जयपुराधिपति का जीवनचरित संक्षेप से सुनाया जाता है। कछवाहा राजपूत सूर्यवंशी हैं और इनकी उत्पत्ति रामचन्द्रजी के ज्येष्ठ पुत्र कुश से है। यह वही महाराज रामसिंहजी थे कि जिन-के पूर्वज महाराज मानसिंहजी ने पश्चिमोत्तर में काबुल पर्य्यन्त और दक्षिण-पश्चिम में अरब की खाड़ी में स्थित उन टापुओं पर्य्यन्त, कि जहां पर अब बम्बई बन्दर सुशोभित है, अपना प्रताप प्रगट करके मुग़ल शिरोमणि सम्राट अकबर शाह के समय में बहुत कुछ सम्मान और सुयश सम्पादन किया था। इतिहास और काव्य-प्रेमियों में ऐसा कोई विरला हो होगा जिसका हृदय—

जननी जनें तो ऐसा जन जैसे मान मरद।
समदर खांडो खोलियो काबुल पाड़ी हद॥

दोहे से उल्लसित न हुआ हो। जब काबुल जाते हुए राजा मान की राजपूत सेना ने धर्म की दुहाई देकर अटक नदी पार जाने में आनाकानी की तब वह वीर-पुङ्गव—

सब ही भूमि गुपाल की या में अटक कहा।
जाके मन में अटक है सोही अटक रहा॥

सुप्र-सिद्ध दोहा कहते हुए सबसे प्रथम स्वयं अटक के पार हो गये। निदान उनकी सेना ने भी शीघ्र उनका अनुकरण किया। यह रामसिंहजी उन्हीं महाराज जयसिंह जी के वंशज थे जिनको मुग़ल सम्राट औरङ्ग़ज़ेब ने उनकी अतुलित शूरवीरता पर प्रसन्न होकर मिरज़ा राजा की उपाधि दी थी। यह उन्हीं महाराज सवाई जयसिंहजी के वंशावतंस थे कि जिनका ज्योतिष-शास्त्र पर असाधारण प्रेम ही नहीं था, किन्तु उसमें वह स्वयं ऐसे पारङ्गत थे कि योरोप के सबसे पश्चिमवर्त्ती राज्य पोर्चु-गाल में भी उस समय के विद्वानों ने आपको इस

महाकठिन शास्त्र का आचार्य्य माना था। महाराज जयसिंहजी के बनाये हुए यन्त्रालय काशी, दिल्ली, जयपुर आदि नगरों में उनकी अनुपम विद्या बुद्धि का सुयश आज भी विस्तारित कर रहे हैं। उनको देख कर साम्प्रत पश्चिमीय वैज्ञानिकों को भी उनके निर्माता को असाधारण बुद्धि के आगे अपना मस्तक नमन करना पड़ता है। जयपुर नगर भी श्री महाराज जयसिंहजी की ही विचक्षण बुद्धि का एक नमूना है। लोगों का कथन है कि राजपूताना के अन्तर्गत जयपुर का मुख्य नगर भारतवर्ष के सुन्दर नगरों में प्रायः सर्वोत्तम समझने योग्य है।

महाराज सवाई रामसिंहजी का जन्म विक्रम सम्वत् १८९१ की भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी (अनन्त चतुर्दशी) को हुआ था। जिस समय आप जयपुर ऐसे बृहत् राज्य के स्वामी हुए, आपकी अवस्था बहुत छोटी, अर्थात् कुल डेढ़ ही वर्ष की, थी। इस समय राज्य में बड़ी हलचल मच रही थी। मुख्य मंत्री संघी झूंथारामजी थे, कि जो पीछे स्वामिद्रोह के अपराध में बन्दी करके सरकार अंगरेज़ी की आज्ञा से चुनारगढ़ भेज दिये गये। रामसिंहजी की बाल्यावस्था में राज्य की अवस्था स्थिर न होकर बहुत चञ्चल रही। कुछ काल के लिए राज्य का सम्पूर्ण काम रज़ीडण्ट साहब की अनुमति से कौन्सिल नाम राजसभा करती थी। संवत् १९०७ में भारतवर्ष की सरकार ने महाराज रामसिंहजी को राज्य के पूर्ण अधिकारों से विभूषित किया। इसके चार वर्ष उपरान्त ही राज्य के प्रधान मंत्री रावल शिवसिंहजी का देहान्त हो गया। तब श्रीमान ने ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी को अपना प्रधान मंत्री बनाया। इनके देवलोक होने पर महाराज रामसिंहजी ने पण्डित शिवदीनजी को, जिन्होंने महाराज साहब को अंगरेज़ी पढ़ाई थी, इस पद के पूर्ण योग्य समझ अपने प्रधानामात्य का अधिकार दिया। पण्डितजी एक योग्य पुरुष थे और राजनीति में भी निपुण थे। इन्होंने इस राज्य में बहुत कुछ सुधार किये। ये मरण-पर्यन्त इस पद पर प्रतिष्ठा के साथ काम करते रहे।

सन् १८५७ ई० में, ग़दर के समय, महाराज रामसिंहजी ने सरकार को बहुत सहायता पहुंचाई थी। इसके बदले में अंगरेज़ी सरकार ने प्रसन्न होकर श्रीमान् को कोट क़ासिम का विशाल परगना इनायत किया।

सन् १८६५ ई० में महाराज रामसिंहजी बहुत ठाट बाट और धूम धाम की बरात के साथ जोधपुर विवाह के लिए पधारे। जोधपुर के महाराज तख़्तसिंहजी ने बड़ी प्रीति के साथ कई दिवस तक बरात को वहां पर रक्खा। यह विवाह भी राजपूताना में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी समता का दूसरा कोई विवाह राजपूताना में कहीं नहीं हुआ। जोधपुर के विवाह से पीछे पधारती समय जब महाराज रामसिंहजी अजमेर पहुंचे, तब राजपूताना के एजण्ट गवरनर जनरल साहब ने अंगरेज़ी सरकार की ओर से महाराज रामसिंहजी को जी० सी० एस० आई० की उपाधि से अलङ्कृत किया।

सम्वत् १९२५ में समस्त देश में घोर अकाल पड़ा, जो राजपूताना में "पच्चीसा" के नाम से पुकारा जाता है। महाराज रामसिंहजी ने दुर्भिक्ष-पीड़ित मनुष्यों के सहायतार्थ कई एक सुप्रबंध किये। रामनिवास बाग़ की नींव भी इसी समय डाली गई थी। आज कल जयपुर के रामनिवास बाग़ की बराबरी करने वाला बाग़ भारतवर्ष में शायद कोई बिरला ही होगा। इसी समय से अन्न पर जो चुङ्गी ली जाती थी, श्रीमान् ने प्रजा पर दया करके बिलकुल उठा दी। अकाल के समय अपनी प्यारी प्रजा के प्राण बचा कर श्रीमान् ने अक्षय्य पुण्य के साथ साथ प्रजा के हार्दिक आशीर्वाद और देश-देशान्तर-व्याप्त सुयश का भी लाभ किया। जयपुर के नरेशों की सलामी के लिए अंगरेज़ी सरकार से १७ तोपें नियत हैं। परन्तु इस अकाल के सुप्रबन्ध से सन्तुष्ट होकर अंगरेज़ी सरकार ने महाराज रामसिंहजी की १७ से १९

तोप को सलामी करदी। श्रीमान् ही का अनुकरण करके वर्तमान महाराजाधिराज श्रीसवाई माधव-सिंहजी ने भी संवत् १९५६ के कराल दुर्भिक्ष के पञ्जे से अपनी प्यारी प्रजा को बचाया। अपनी प्रजाही नहीं, किन्तु समस्त भारत की प्रजा के साथ, आपने अपनी सच्ची सहानुभूति प्रगट की और बोस लाख रुपये ऐसी भारी रक़म दान करके "इण्डियन फ़ैमीन फ़ण्ड" की नींव डाली कि जिस-से श्रीमान् की कीर्ति-कौमुदी सब ओर चमकने लगी। सच तो यह है कि इस समय में यह असा-धारण पुण्य कार्य करके श्रीमाधवसिंहजी ने अपना सुयश अमर करने के साथ ही अपने नाम "माधव" को स्पष्ट रूप से सार्थ प्रमाणित कर दिया।

भारत के वाइसराय लार्ड मेओ और जयपुर नरेश महाराज रामसिंहजी से परस्पर दृढ़ मित्रता थी। सुना जाता है कि लार्ड मेओ के दिल में हिन्दु-स्थान की देशी रियासतों की सालाना आमदनी से अंगरेज़ी सरकार जो कर लेती है, उस विषय में एक नवीन नियम बनाने की प्रबल इच्छा थी। परन्तु महाराज रामसिंहजी के इस नीति का युक्ति-युक्त विरोध करने पर श्रीमान् बड़े लाट साहब ने अपना विचार बदल दिया। यदि ऐसा न होता तो इस समय भारतभूमि में बड़ी बड़ी रियासतों के कोष धन सम्पत्ति से परिपूर्ण देखने का सौभाग्य हमको शायद ही मिलता। जब अण्डमन द्वीप में भ्रमण करते हुए लार्ड मेओ एक अविवेकी बन्दी के हाथ से मारे गये, तब श्रीमान् को अत्यन्त दुःख हुआ। महाराज रामसिंहजी ने अपने मित्र लार्ड मेओ की धातुमयी मूर्ति बनवाकर उसे रामनिवास बाग़ में स्थापन करके अपनी सच्ची मित्रता का पूरा परिचय दिया। केवल इसी पर सन्तुष्ट न होकर श्रीमान् ने अपने मित्र लार्ड मेओ के जयपुर पधारने की यादगार में "मेओ हास्पिटल" नाम से एक विशाल औषधालय बनवाया कि जो श्रीमान् वर्त-मान जयपुराधीश की कृपादृष्टि से समय समय पर संवर्द्धित और नूतन आविष्कारों से सु-सम्पन्न होने के कारण आज कल समस्त भारतवर्ष के उत्तमोत्तम शफ़ाख़ानों में से है।

सम्वत् १९३२, अर्थात् सन् १८७५ ई० में, राज-कुमार प्रिन्स आफ़ वेल्स (वर्तमान राजराजेश्वर श्रीसप्तम एडवर्ड) ने जयपुर पधार कर इस राज्य को सुशोभित और सम्मानित किया। श्रीमान् युव-राज का आदर सत्कार जिस रीति से किया गया उसका उल्लेख विस्तारभय से नहीं किया जाता। परन्तु इतना लिखना आवश्यक है कि श्रीमान् राजकुमार प्रिन्स आफ़ वेल्स अपने सहचरवर्ग-सहित इस स्वागत से बहुत प्रसन्न हुए। कहते हैं कि श्रीमान् युवराज ने अपने हाथ से शेर का शिकार प्रथम ही प्रथम जयपुर ही में किया था। यह शिकार जयपुर के निकट झालाणा के पहाड़ में हुआ। शिकार का थकान उतारने के लिए जब श्रीमान् युवराज 'लञ्च' पर बैठे तब कुछ मदिरा आस्वादन कर लेने के अनन्तर महाराज रामसिंह-जी को निकट ही बैठा देखकर फ़रमाया कि जल्दी में हम आप की मनुहार करना भूल गये थे, सो आप मुआफ़ करें। हमको मालूम नहीं कि अब भी हम अपने हाथ से आप को मनुहार मदिरा से करें या नहीं, क्योंकि इन शराब की बोतलों को शायद आप झूंठी समझते होंगे। महाराज रामसिंहजी ने उत्तर दिया कि हम हिन्दुओं के शास्त्र में राजा सामान्य मनुष्य नहीं माना गया। राजा को हम लोग देवांश समझते हैं, अर्थात् हमारे विश्वास के अनुसार राजा जाति-पांति-वर्णाश्रमादि भेद से ऊपर है। यही कारण है कि बड़े बड़े मुनियों और ब्रह्मर्षियों ने सदैव राजाओं के यहां आने, जाने, खाने, पीने और विवाहादि करने कराने में कभी कोई सङ्कोच नहीं किया है। यही समझकर जयपुर के राजाओं ने मुग़ल बादशाहों से ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध किया था। इन सब बातों को जान-बूझ कर भी आप मेरी मदिरा की मनुहार करते समय जो ऐसा कह रहे हैं, इससे पाया जाता है कि या तो यह दिल्लगी है या यह मेरी परीक्षा है।

इस उत्तर से युवराज और उनके साथी सब ही इतने मुग्ध हुए कि उनके मुंह से सिवा 'वाह' 'वाह' के और कुछ नहीं निकला। महाराज रामसिंह जी की वाक्पटुता ने अच्छे अवसर पर उनकी सहायता की। न तो इस अद्भुत उत्तर को श्रवण करके युवराज को अपने हाथ का मदिरा का झूंठा प्याला जयपुर नरेश को देने का स्मरण रहा और न महाराज रामसिंह जी को कोई ऐसा शब्द कहना पड़ा कि जो अप्रिय हो। श्रीमान् युवराज प्रिन्स आफ़ वेल्स को यादगार में महाराज रामसिंहजी ने एक सुविशाल और सुमनोहर भवन रामनिवास में निर्माण कराया। इसकी नींव स्वयं युवराज ने अपने हाथ से डाली थी। इसका नाम भी श्रीमान् युवराज के नाम पर 'ऐलबर्ट हाल' रक्खा गया है। इसकी इमारत बहुत सुन्दर है और कई अंशों में आगरे के ताज का स्मरण कराती है। कहीं कहीं पर जो इसमें प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं के सुन्दर चित्र खचित किये गये हैं उनको देख कर आश्चर्य-सागर में निमग्न होना पड़ता है। समस्त भूमण्डल के अद्भुत अद्भुत और उत्तमोत्तम पदार्थों का इसमें समावेश है। महाराज रामसिंहजी के समय से लेकर अब तक इस अद्भुतालय (म्यूज़ियम) में कुछ कुछ वृद्धि बराबर की जाती है। इस कारण कहा जाता है कि कलकत्ते के इनटरनेशैनल म्यूज़ियम को छोड़कर भारतवर्ष में जयपुर के म्यूज़ियम की तुलना करनेवाला म्यूज़ियम अन्यत्र कहीं भी नहीं है॥

महाराज रामसिंहजी बड़े प्रजावत्सल थे। प्रजा की भलाई के कार्यों में आप सर्वदा सन्नद्ध रहते थे। अपनी प्रजा के सुख दुःख जानने की आपको प्रबल इच्छा बनी रहती थी और इसीलिए आप वेष बदलकर भी, कभी दिन में, कभी रात में, प्रायः घूमा करते थे। ख़बर के महकमे को भी श्रीमान् के समय में बड़ी चाल थी। इस महकमे के द्वारा जयपुर राज्य के किसी भी स्थान में श्रीमान् के जानने योग्य जो बात होती वह यथा सम्भव अत्यन्त शीघ्रता के साथ श्रीमान् की सेवा में आ पहुंचती थी। प्रजा के दुःख-श्रवण मात्र ही की आपको इच्छा नहीं रहती थी, किन्तु अपनी प्यारी प्रजा के कष्टों को दूर करने के निमित्त भी आप सदैव बद्ध-कटि रहते थे। किसी किसी समय नगर के बाहर भी आप दूर दूर गमन किया करते थे। सारांश यह है कि प्रजा को सुख और लाभ पहुंचाना आप अपना परम कर्तव्य मानते थे।

सन् १८७५ ई० में श्रीमान् मल्हाररावजी गायकवाड बड़ौदा पर बड़ौदा के सरकारी रज़ीडण्ट को विष दिलाने का अभिशाप लगाया गया था। इसकी जांच के वास्ते अंगरेज़ी सरकार ने योरोपियन और देशी सभ्यों का एक मिश्रित कमीशन नियत किया था। श्रीमान् रामसिंहजी भी इस कमीशन के सभ्य हुए थे। यह बात भी इनके पूर्ण अनुभवी, बुद्धिमान्, नीतिनिपुण और सरकार के कृपापात्र होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

महाराज रामसिंहजी बड़े उदार थे। श्रीमान् के पक्ष में "उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्" की उक्ति समीचीन रूप से सार्थक होती थी। जो कोई श्रीमान् के निकट पहुंच गया, मानो उसके भाग्य खुल गये। आपके समय में कितने ही मनुष्य दरिद्रावस्था से धनाढ्यता को पहुंचे हैं। प्रधान मंत्री का पद कई पुरुषों को प्राप्त हुआ। श्रीमान् ने सभी को जागीरें प्रदान करके ऐसा प्रतिष्ठित बना दिया कि उनके पुत्र पौत्रादि भी वैसे ही बने रहेंगे। इसमें कुछ संशय नहीं। सुना जाता है कि श्रीमान् एक समय अकेले ही ऊँट पर सवार होकर अलवर राज्य में गुप्तरूप से भ्रमण कर रहे थे। रात को किसी दरिद्र और वृद्ध ब्राह्मणी के घर आपने विश्राम लिया। प्रातःकाल उठे तो आपका हृदय उस दीना ब्राह्मणी की दरिद्रावस्था को देख कर आर्द्र हो आया और आपने घर से एक ठीकरी के टुकड़े पर कोयले से अपने करकमल से श्रीमान् महाराज साहब अलवर के नाम कुछ लिख दिया।

इस पत्र के अलवर नरेशों के पास पहुंचने पर उस वृद्धा ब्राह्मणी को अलवर राज्य से एक कोठी और कुछ भूमि देदी गई जिससे उसका भरण पोषण उचित रीति पर होने लगा। वृद्धा की सन्तति के अधिकार में यह कोठी और भूमि अब तक बराबर चली आती है।

महाराज रामसिंहजी जैसे ऊँट और घोड़े आदि की सवारी में दक्ष थे वैसे ही शूरवीर भी थे। कहते हैं कि एक बार श्रीमान् ने केवल एक ही भाले से अकेले ही एक भयङ्कर शेर का शिकार किया था।

महाराज रामसिंहजी सनातन धर्म में पूर्ण भक्ति और श्रद्धा रखते थे। हिन्दुओं की सभी सम्प्रदायों को ओर समय समय पर आपको समान दृष्टि रही थी। श्रीमान् पक्के वैष्णव, सच्चे शैव, और पूरे शाक्त थे। अर्थात् इन सभी में आपका दृढ़ विश्वास था और इन सभी सम्प्रदायों के आचार्यों का आप पूर्ण रीति पर आदर सत्कार करते थे। जिस रुचि के मनुष्य ने आपको जिस अवस्था में देखा, उसको श्रीमान् वैसे ही दृष्टि आये थे। यहां तक कि श्रीमान् को योगी और वेदान्ती कहने वालों की भी कमी नहीं है। जिधर की ओर आपका ध्यान गया, कुछ काल तक श्रीमान् उसी रङ्ग में रँग गये थे।

विद्या में आपका असाधारण अनुराग था। इसका दृढ़ प्रमाण यही है कि आपकी प्यारी प्रजा के विद्यादान के लिए श्रीमान् ने अपनी राजधानी जयपुर में अंगरेज़ी, फ़ारसी और संस्कृत के भिन्न भिन्न कालेज स्थापन किये, कि जो अब श्रीमान् वर्तमान नरेश के प्रताप से पूर्ण उन्नति पर हैं और जिनका कार्य बहुत ही उत्तमता से हो रहा है। अंगरेज़ी की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध तो अब अन्यान्य रियासतों में भी कई जगह है; परन्तु संस्कृत, अरबी, फ़ारसी की उच्च शिक्षा में जयपुर की समता अब भी और कोई रियासत नहीं कर सकती। राजधानी के सिवा समस्त राज्य के बड़े बड़े ग्रामों में भी हिन्दी, उर्दू और अंगरेज़ी की आवश्यकतानुसार कई पाठशालायें विद्यमान हैं। सब प्रकार के विद्वानों का, चाहे वे कहीं से भी क्यों न आये हों, श्रीमान् के निकट उचित सत्कार होता था। महामहोपाध्याय पण्डित दुर्गाप्रसाद जी, भूतपूर्व सम्पादक काव्यमाला, ने जब श्रीमान् की गुणग्राहकता का वर्णन सुना तब श्रीमान् की सेवा में वे उपस्थित हुए। श्रीमान् के योग्य आश्रय प्रदान करने पर पण्डितजी ने जयपुर ही को अपना निवासस्थान बना लिया। शिल्प की ओर भी महाराज रामसिंहजी की पूर्ण रुचि थी। इसी लिए एक शिल्पशाला भी श्रीमान् ने निर्माण की। इसमें कितने ही बालक दस्तकारी का काम सीखते हैं। अपने भाई, बेटे, जागीरदार, उमराव और प्रतिष्ठित सज्जनों के पुत्रों को पढ़ाने के लिए श्रीमान् ने एक 'नोबिल्स स्कूल' भी स्थापित किया था। लड़कियों की शिक्षा के भी आप उचित पक्षपाती थे। यही कारण है कि बालिकाओं के पठन पाठन का सुप्रबन्ध अन्यान्य राज्यों की अपेक्षा शायद जयपुर ही में सबसे प्रथम हुआ।

महाराज रामसिंहजी अत्यन्त सुशील, अत्यन्त अनुभवी, अत्यन्त मिष्ठभाषी और अत्यन्त विचक्षण नरेश थे। जब सन् १८७७ ई० में श्रीमान् दिल्ली दरबार में निमन्त्रित होकर पधारे तब वहां पर श्रीमान् का यथोचित आदर सत्कार हुआ। श्रीमान् की सलामी में दो तोपों की वृद्धि तो पहिले ही हो चुकी थी। इस अवसर पर अंगरेज़ी सरकार ने श्रीमान् को सलामी में दो तोपें और बढ़ा दीं। अर्थात् श्रीमान् की सलामी २१ तोप की, जो भारत में रईसों की सलामी के लिए चरमसीमा है, कर दी गई। ऐसा प्रसिद्ध है कि दिल्ली दरबार के समय राजपुताने में रेल चली ही थी। किसी कारण से श्रीमान् ने रेल में यात्रा न करके जयपुर से दिल्ली तक अपनी निज की डाक बिठला कर सफ़र किया था। अंगरेज़ी सरकार के सब अफ़सर, जो रेलवे कम्पनियों के पक्षपाती होते हैं, श्रीमान् के इस

कार्य से प्रसन्न नहीं हुए। अवसर पाकर दिल्ली में हो राजपूताना के एजण्ट गवरनर जनरल साहब ने बड़ो ही युक्ति के साथ एक दिन यह बात छेड़ी कि राजपूताना मालवा रेलवे कम्पनी ने श्रीमान् के विपक्ष एक बड़ी भारी शिकायत की है। श्रीमान् ने फ़रमाया कि वह क्या है। जनाब बड़े साहब ने बड़े नम्रभाव से उत्तर दिया कि रेलवे कम्पनी ने यद्यपि श्रीमान् की शिकायत की है, परन्तु कम्पनी को यह नालिश हमारे यहां नहीं हुई। रेलवे कम्पनी श्रीमान् के विपक्ष श्रीमान् ही की सेवा में अपनी नालिश पेश करती है, कि कम्पनी ने लाखों रुपये लगा कर यह रेल श्रीमान् के आराम के वास्ते खोली है। जो श्रीमान् ही को इससे आराम न पहुंचा तो कम्पनी का यह रुपया निस्सन्देह व्यर्थ हो गया। कम्पनी की इस नालिश का निबटारा श्रीमान् स्वयं ही करें। जिसके आराम के लिए असंख्य द्रव्य व्यय किया जावे पर वह उससे लाभ न उठावे, तो इस द्रव्य के व्यय करने से क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ। महाराज रामसिंहजी ने यह बात सुन कर पहले तो मुसकरा दिया, और फिर फ़रमाया कि कम्पनी की नालिश उन्होंने सुन ली और यथासम्भव इसका उचित न्याय भी किया जायगा। सुनते हैं कि इसके बाद जयपुर-नरेश जब कभी अवसर होता रेल के द्वारा यात्रा करने में सङ्कोच नहीं करते थे। पाठकगण, आपने समझ हो लिया होगा कि महाराज रामसिंहजी किस प्रकृति के नरेश थे और बड़े बड़े कार्यों में उनके साथ सरकारी अफ़सरों का कैसा बर्ताव हुआ करता था।

जयपुर, उदयपुर और बूंदी के राज्यों में परस्पर चिरकाल से वैमनस्य चला आता था। महाराज रामसिंह जी ने इसको सहज ही दूर कर दिया। दिल्ली दरबार के समय एक दिन सायङ्काल श्रीमान् अकेले ही उदयपुर नरेश के डेरे पर पधारे। द्वारपाल ने पहचानते ही दौड़ कर श्रीमहाराणा सज्जनसिंह जी से निवेदन किया। वह चकित होकर असमञ्जस में ही थे कि इतने में श्रीमान् वहां पधार गये। फिर तो दोनों रईस परस्पर बग़लगीर होकर मिले। दोनों में बहुत देर तक बड़े आनन्द के साथ वार्तालाप होता रहा। पीछे पधारते समय महाराज साहब के बहुत कुछ रोकने पर भी महाराणा साहब उसी बग्गी में सवार होकर जयपुर कम्प में पहुंचा गये। इसी प्रकार बूंदीनरेश श्रीराम- सिंह जी से भी स्वयं मिलकर जयपुरनरेश ने उनको पूर्ण प्रसन्न किया। एक बार मिलने पर तीनों नरेशों में स्वाभाविक पूर्ण स्नेह उत्पन्न हो कर दृढ़ मित्रता हो गई। वंशपरम्परागत वैमनस्य भी सहज ही नष्ट हो गया और प्रतिदिन अधिकाधिक प्रीति बढ़ने लगी। दिल्ली दरबार से पीछे पधारते समय महाराणा सज्जनसिंह जी (मेवाड़) और महाराज रामसिंह जी (बूंदी) जयपुर पधारे। जयपुर नरेश ने दोनों ही का उत्तरोत्तर स्वागत किया। यहां पर इनका जो आतिथ्य सत्कार हुआ उस से तीनों राज्यों में और भी घनिष्ट मैत्री हो गई।

महाराज रामसिंह जी राजनीति में बड़े दक्ष थे। श्रीमान् सदैव एक ही मंत्री की राय से सब काम नहीं किया करते थे, परन्तु बड़े बड़े और भारी भारी काम बहुधा अनेकों की सम्मति लेकर करते थे। यही कारण है कि श्रीमान् के समय में प्रधानामात्य का पद कई मनुष्यों को प्रदत्त हुआ। सदा एक ही की बुद्धि के अनुसार चलना श्रीमान् की दृष्टि में उपयुक्त न था। समय समय पर मन्त्रि-परिवर्तन कई एक दशाओं में हानिकारक भी सिद्ध होता है। परन्तु महाराज रामसिंह जी से विचक्षण और अनुभवी नरेश के हाथ में इससे बहुत कुछ लाभ हुआ। जब तक राज्यमद से निरभिमान होकर मन्त्री ने स्वामिसेवा की, श्रीमान ने सानन्द स्वीकार की। जब अपने बुद्धि-बल और राज्य-लक्ष्मी का मद किसीके नेत्रों में तनिक भी दृष्टि आया तब वह पुरुष श्रीमान् की कृपादृष्टि से तत्काल गिर गया। परन्तु प्रत्यक्ष में साधारणतः इसका परिचय उसको या दूसरों को कभी नहीं

होने पाया। श्रीमान् के मुख से सब समय सबके लिए 'हां' के सिवा 'ना' कभी नहीं निकला। जिससे मिलते प्रसन्न-वदन मिलते थे। जब एक मन्त्री श्रीमान् की दृष्टि से गिरता था तब केवल इतना हीं होता कि सब कुछ उससे पूछ पाछ श्रोर सलाह करने पर भी किसी भावी मन्त्री की गुप्त सम्मति से कार्य होने लगता था। पूर्व मन्त्री प्रगट में अपने अधिकार के सत्कार पुरस्कारादि भोगते रहने पर भी वास्तव में अपना मन्त्रिपद दूसरे के हस्तगत हुआ जान लेता था। मन्त्रि-परिवर्तन से श्रीमान् का श्रोर भी एक गुरुतर अभीष्ट था। किसी योग्य मनुष्य के उत्साह को भङ्ग करना श्रीमान् को कदापि अभोष्ट न था। इसी लिए योग्यतानुसार आप सभी योग्य पुरुषों को उत्तमोत्तम राज्याधिकारों से सुशोभित होने का अवसर प्रदान करते रहते थे।

राजनीति में पूर्ण कुशल देख कर ही अंगरेज़ी सरकार ने श्रीमान् को अंगरेज़ीभाषा के पूर्ण पण्डित न होने पर भी इम्पीरेयल लैजिसलेटिव कौनसिल का मैम्बर नियत किया था। यह कार्य बहुत योग्यता के साथ श्रीमान् ने पांच छै वर्ष तक किया।

श्रीमान् के समय में प्रजा के सुख के असंख्य काम हुए। जिन में आने जाने के लिए सुन्दर सड़कें, सुप्रबन्ध के लिए स्थान स्थान में थाने, चिकित्सा के लिए शफ़ाख़ाने, पढ़ने के लिए पाठशालाएँ, न्याय के लिए कचहरियां, आबपाशी के लिए नहर, तालाब, श्रोर राजधानी में गैस की रोशनी, स्वच्छ पानी के नल, सड़कों का छिड़काव आदि मुख्य हैं। इन सब बातों से महाराज सवाई जयसिंह जी का बसाया हुआ यह सुन्दर जयपुर नगर श्रोर भी सुन्दर हो गया है।

सम्वत् १९३७ की भाद्रपद शुक्ला चर्तुदशी (अनन्त चर्तुदशी, जो श्रीमान् की जन्मतिथि थी) के दिन पूर्णिमा आजाने पर ४६ वर्ष की अवस्था में साधारणतः एक दो दिन रुग्ण रह कर महाराज रामसिंह जी इस असार संसार का परित्याग कर स्वर्ग को सिधार गये। श्रीमान् के स्वर्ग-प्रयाण करने के समाचारों से जयपुर राज्य की प्रजा ही को नहीं, किन्तु समस्त राजस्थान की श्रोर अंगरेज़ी राज्य की प्रजा को भो असह्य दुःख हुआ, क्योंकि श्रीमान् के शील स्वभाव, श्रोदार्य, विद्याभिरुचि, शिल्पोन्नति की उत्कट इच्छा, प्रजावात्सल्य, स्वदेशानुराग श्रोर राज-नोति-निपुणता आदि अनेक अनुकरणीय गुणों ने सबको मन्त्रमुग्ध कर लिया था।

पाठकगण, महाराज रामसिंह जी अपने समय के राजाओं में बहुत प्रसिद्ध श्रोर यशस्वी हो गये हैं। अन्यान्य कई गुणों के अतिरिक्त गुणग्राहकता का सद्गुण इनमें पराकाष्ठा का वर्तमान था। इस गुण की अद्भुत आकर्षणशक्ति के द्वारा देशदेशान्तर के विद्वान्, कवि श्रोर सङ्गीतशास्त्र के वेत्ता जयपुर में चले आये श्रोर महाराज के रामराज्य में उदाराश्रय पाकर वहां ही के हो रहे। किसी भी प्रकार का हुनरमन्द श्रोर कलाकुशल मनुष्य श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होकर अपने योग्य सत्कार से वञ्चित न रहा। यहां तक कि गायक, नर्तक, पतङ्गबाज़, पहलवान, अण्टाबाज़, घड़ीसाज़, चित्रकार, घुड़सवार, सांड़नीसवार, गाड़ीवान, फ़ीलवान, दरज़ी आदि सभी को इनके समय में न्यूनाधिक काल तक इनके पूर्ण कृपापात्र बनने का सौभाग्य मिला। यद्यपि समय समय पर इन्होंने सभी तरह के शौक़ किये थे, परन्तु किसी भी व्यसन में यह निमग्न नहीं हुए। जिधर मन जाता कुछ काल तक उधर ही ऐसे व्यग्र हो जाते कि दूसरे लोगों को निस्तार की आशा नहीं रहती। परन्तु इनका यह ज़ाहिरा तैार का नीर-क्षीर-संयोग चिरकाल तक नहीं रहता। यदि ऐसा न होता तो विविध-गुण-गणालङ्कृत गुणवानों को बारी बारी से इनके कृपाभाजन बनने का अवसर कहां से मिलता? बहुतों का विश्वास है कि जयपुर, चित्तोरगढ़, जोधपुर, आबू, शिमला, कलकत्ता आदि दूर दूर के नगरों में इन्होंने अपरिचित रूप

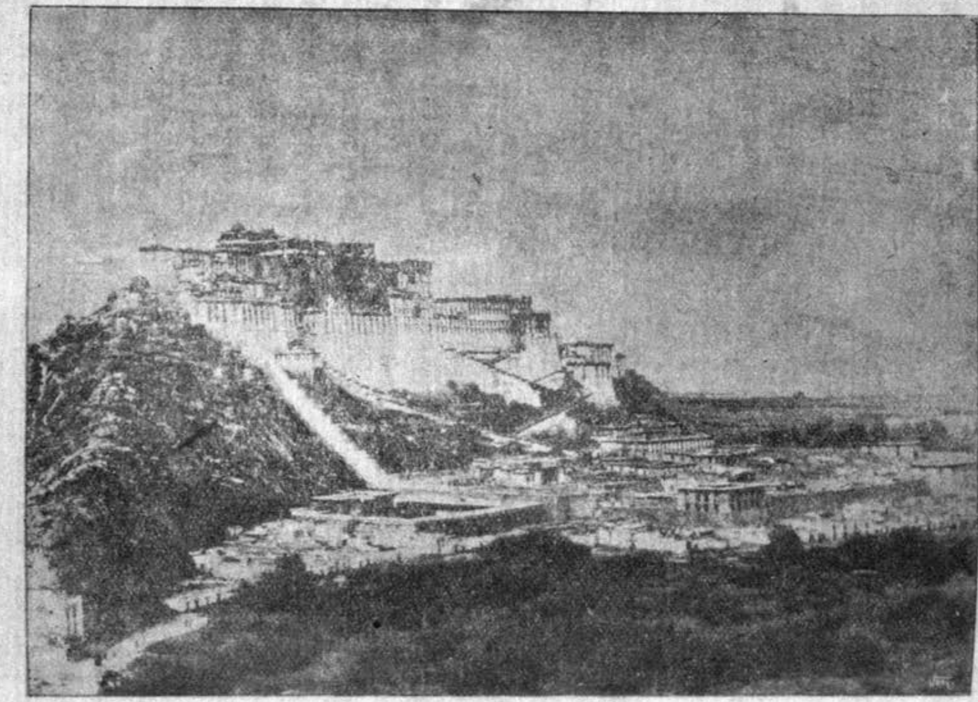

लासा नगर के ऊपर पोताल्ह का मन्दिर

से यथेच्छ भ्रमण किया था। इसका यह प्रमाण है कि कभी कभी इन स्थानों के विषय में ऐसी ऐसी बातें श्रीमान् के मुखारविन्द से सुनी जाती थीं कि जो साधारण रीति से एक दो बार वहां आने जाने वालों को मालूम नहीं हो सकतीं। हमने जयपुर के लोगों से यह बात आम तौर पर सुनी है कि महाराज रामसिंह जी के समय में जितने मनुष्य ऐसे बने हैं उतने किसी एक राजा के राज्य में कभी कहीं नहीं बने। यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है कि कुछ समय तक किसी ओर पूर्ण दत्त-चित्त होकर फिर यह उधर से अपने मन को सहसा खींच लेते थे। परन्तु इस हटने के साथ ही पहले के कृपापात्रों को कुछ हानि न होकर दूसरों को इनके कृपाकटाक्ष से प्रफुल्लित होने का अवसर मिला करता था। सारांश यह है कि इन्होंने जिस-को अपने हाथ से बनाया उसे कभी नहीं बिगाड़ा। सच है "विष वृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तु-मसाम्प्रतम्"।

इनको योग्यता केवल एक इसी बात से प्रमाणित हो जायगी कि अंगरेज़ी सरकार, देशी राजा (जिनसे इनका परिचय था), जयपुर को प्रजा और साधारणतः भारतवर्ष के सामयिक इतिहास जाननेवालों को इन पर पूर्ण श्रद्धा थी और सभी इन की एक स्वर से स्तुति करते थे। सर्वप्रियता को यदि योग्यता की कसौटी कही जावे तो महाराज रामसिंह जी को योग्यता में किसीको कुछ संशय नहीं हो सकता।

महाराज रामसिंह जी के समय में न्यूनाधिक पांच सात लाख रुपये वार्षिक आय के ग्राम इनके कृपापात्रों को वंश-परम्परा-रूप से प्रदान किये जाने पर और शिक्षा-विभाग, पबलिक वर्क्स, और चिकित्सा-विभाग आदि में पूर्वापेक्षा अतुलित व्यय होने पर भी राज्य की वार्षिक आय में बहुत कुछ वृद्धि हुई। यही इनके सुप्रबन्ध का प्रत्यक्ष प्रमाण है। महाराज प्रतापसिंह जी ईडर नरेश ने, जो महाराज रामसिंह जी के श्वसुर महाराज तख़्तसिंहजी जोधपुरनरेश के पुत्र हैं, बहुत काल तक जयपुर में रह कर इन्हींसे (महाराज रामसिंह जी से) नीति-शिक्षा ग्रहण की है। यह उसी उत्तम शिक्षा का फल है कि अंगरेज़ी सरकार ने महाराज प्रतापसिंहजी को जोधपुर के प्रधानामात्य से ईडर ऐसे राज्य का स्वतन्त्र नरेश बना दिया।

राज्य-प्रबन्ध आजकल जिस परिपाटी पर चल रहा है, उसकी बुनियाद महाराज रामसिंह जी ही डाल गये हैं। जलेब-चौक में राज्य की सब कचहरियों को श्रीमान् ने ही एकत्र किया था। जयपुर के विचारशील मनुष्यों की सम्मति में सांभर झील के जयपुर के भाग को अंगरेज़ी सर-कार को ठेके पर देना, खारी नमक का बनना राज्य भर में बन्द करना, बाज़दारों के पञ्जे में पड़कर हर एक स्थान और हर एक समय में चिड़िया कबू-तरों के बे रोक टोक मारने की आज्ञा देना, दो एक बार पक्षपातियों के कहने में आकर सर्व साधारण के धर्म-विचारों पर अनुचित हस्ताक्षेप करना और श्रीचन्द्रमा जी तथा मदनमोहन जी ऐसे स्वरूपों को जयपुर से अन्यत्र पधारते न मनाना, श्रीमान् की बहुदर्शिता के निर्मल दर्पण में श्यामल चिन्ह प्रतीत हो रहे हैं। परन्तु इस संक्षिप्त लेख के पाठकों से शायद यह निवेदन करने की आव-श्यकता न होगी कि श्रीमान् के समय में जो हानि लाभ हुआ उसके खाते में जमा की रक़म अधिक है या ख़रच की।

इस लेख में श्रीमान् महाराज रामसिंह जी के राज्य-समय की बड़ी बड़ी बातों और घटनाओं का संक्षेप से उल्लेख किया गया है। चरित्र-नायक की गुणावली का और उनके कामों का, जिनका सम्बन्ध राज्य और सर्वसाधारण से है, दिग्दर्शन मात्र किया गया है। छोटी छोटी कई बातों का, जो भली और बुरी श्रीमान् के समय में अनेक हुई हैं, नाम निर्देश भी विस्तार भय से यहां पर नहीं किया गया है।

पुरोहित गोपीनाथ।

शान्तिमयी शय्या ।

[१]

मनोहारी शय्या परम सुथरी भूमितल की
सुहाती क्या ही है ललित वन के दूबदल से ।
नदी के कूलों की विमल वर इन्दुद्युति सम
नई रेती से जो अति चमकती है निशि दिन ॥

[२]

सुहाने वृक्षों की अति सघन पंक्ति-प्रवर से
लता प्यारी प्यारो लिपटति अनोखी तरह से ।
रँगीले फूलों की नवल वन-माला पहन के
लुभाती हैं जी को पथिक-जन के वे विपिन में ॥

[३]

सुरीली वीणा सी सरस नदियाँ वादन करैं
कभी मीठी मीठी मधुर धुनि से गायन करैं ।
सदाही नाचै हैं झरित झरने नाच नवल;
निराली शोभा है विपिन-वर को कौतुकमयी ॥

[४]

कभी धीरे धीरे व्यजन करती मन्द गति से;
चली आती दौड़ी पवन मदमाती मलय की ।
कभी चित्ताकर्षी शिशिरकणवर्षी विपिन में;
दिखाती है शोभा सुखद, मन लोभा न किसका ?

[५]

महा-शोभा-शाली विपुल विमला चन्द्रकिरणें
घने कुञ्जों में हैं सतत घुस के खेल करतीं ।
कभी हो जाती हैं सघन घन के ओट-पट में;
वियोगी योगी के हृदय हरतीं तत्क्षण सदा ॥

[६]

कभी आती निद्रा विमल परमानन्द पद की;
सुहानी शय्या में अतिशय सनी शान्त रस से ।
कभी आँखों को है चकित करती प्राचि अबला;
दिखाती आती है अमल अरुणाई अधर की ॥

[७]

छटा कैसी प्यारी प्रकृति तिय के चन्द्रमुख की;
नया नीला ओढ़े वसन चटकीला गगन का ।
ज़री-सल्मा-रूपी जिस पर सितारे सब जड़े;
गले में स्वर्गङ्गा अति ललित माला सम पड़ी ॥

सत्यशरण रतूड़ी ।

जीवनगीत ।

[Longfellow के "A Psalm of Life," का भावार्थ]

[१]

Tell me not, in mournful numbers,
'Life is but an empty dream !'
For the soul is dead that slumbers,
And things are not what they seem.

शोक भरे छन्दों में मुझसे
कहो न,—"जीवन सपना है" ।
जो सोता है वह है मृतवत्,
जग का रंग न अपना है ॥

[२]

Life is real ! Life is earnest !
And the grave is not its goal;
'Dust thou art, to dust returnest,'
Was not spoken of the soul.

जीवन सत्य, नहीं झूठा है,
चिता नहीं इसका अवसान ।
"तू मिट्टी, मिट्टी होवेगा"
उक्ति नहीं यह जीव-निदान ॥

[३]

Not enjoyment, and not sorrow,
Is our destined end or way;
But to act, that each to-morrow
Find us farther than to-day.

भोग विलास नहीं, न दुःख है,
मानव-जीवन का परिणाम ।

करना हीं चाहिए नित्यप्रति
अधिकाधिक उन्नति का काम ॥

[४]

Art is long, and Time is fleeting,
And our hearts, though stout and brave,
Still, like muffled drums are beating
Funeral marches to the grave.

गुण है अमित, समय चञ्चल है,
यद्यपि हृदय बहुत बलवान,
तद्यपि ढोल समान बिलखता
चिता-ओर कर रहा प्रयान ॥

[५]

In the world's broad field of battle,
In the bivouac of Life,
Be not like dumb, driven cattle,
Be a hero in the strife !

जग की विस्तृत रण-स्थली में
जीवन के झगड़ों के बीच,
नायक बनकर करो काम सब,
पशुओं ऐसे बनो न नीच ॥

[६]

Trust no Future, howe'er pleasant !
Let the dead Past bury its dead !
Act—act in the living Present !
Heart within and God o'erhead !

नहीं भविष्यत् पर पतियावो,
मृतक भूत को जानो भूत ।
काम करो सब वर्तमान में
सिर प्रभु, मन दृढ़—यह करतूत ॥

[७]

Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime ;
And, departing, leave behind us
Footprints on the sands of time ;—

सज्जन चरित सिखाते—हम भी
कर सकते हैं निज उज्ज्वल ।
जग से जाते समय-रेत पर
छोड़ें चरण-चिन्ह निर्मल ॥

[८]

Footprints, that perhaps another,
Sailing o'er life's solemn main
A forlorn and shipwrecked brother,
Seeing shall take heart again.

चरणचिन्ह ये देख कदाचित्,
उत्साहित हों वे भाई,
भवसागर की चट्टानों पर
नौका जिनकी टकराई ॥

[९]

Let us then, be up and doing
With a heart for any fate ;
Still achieving, still persuing,
Learn to labour and to wait.

हो सचेत श्रम करो सदा तुम,
चाहे जो कुछ हो परिणाम ।
सदा उद्यमी होकर सीखो
धीरज धरना, करना काम ॥

पुरोहित लक्ष्मीनारायण ।

मालविका और अग्निमित्र ।

[महाकवि श्रीकालिदास के नाटक की आख्यायिका ।

[गत अङ्क के आगे]

[७]

अब इधर की व्यवस्था यह है, कि मालविका के विरहानल से तपते हुए महाराज अग्निमित्र, अपने विलासभवन में, पलङ्ग पर लेटे हुए, बारम्बार, चिहुँक चिहुँक, द्वार की ओर देखते थे। लाचार उन्होंने घबराकर प्रतिहारी जयसेना को पुकारा और कहा—"बड़ी देर हुई; अब तक गौतम न लौटा। क्या तुम यह हाल जानती हो, और इस बात का पता लगा सकती हो, कि उसके आने में इतनी देर क्यों हुई ?"

यह सुन जयसेना कुछ कहा ही चाहती थी, कि गौतम आ पहुंचा; और उसके हँसते हुए चेहरे को देख, महाराज पलङ्ग से उठ बैठे और बोले "वाह मित्र! तुमने तो बड़ी ही देर लगाई; अच्छा कहो तुम उधर के क्या समाचार लाए?"

इस पर गौतम ने कहा–"महाराज। उस दिन जो आपको मालविका के साथ रानी इरावती ने देख लिया; और आपके बहुत मनाने पर भी वे न मान, रूस कर, अन्तःपुर में चली गईं,—इस रूसने का फल यह हुआ कि उन्होंने बड़ी महारानी से जाकर आपका सब सच्चा हाल कह सुनाया; और यहां तक इस आग को भड़काया, कि बड़ी महारानी ने जल भुन कर मालविका को, वकुलावलिका के साथ, बेड़ियों से जकड़, अन्तःपुर के उस वन्दीगृह में क़ैद कर रक्खा है कि जिसमें विशेष अपराध करने पर प्रायः लौंडियां क़ैद रक्खी जाती हैं। अब ऐसी हालत में, इस समय, मालविका से मिलने की आशा करनी वैसी ही कठिन है, जैसे समुद्र में फेंकी गई हुई किसी वस्तु के पुनः पाने की"।

गौतम के इस प्रकार निराशापूर्ण वचन को सुन महाराज ने ठण्ढी सांस ली और कहा–"तो क्या अब हम उस चन्द्रवदनी के मिलाप की आशा उस रोगी की भांति एक दम से छोड़ दें कि जिसे आरोग्य होने की आशा से बिलकुल निरास होना पड़ा हो?"

इस पर गौतम ने हँस कर कहा–"महाराज! कदापि नहीं, क्योंकि जैसे सद्वैद्य रोगी को कदापि निराश होने नहीं देता, वैसे ही गौतम के रहते आपको मालविका के मिलने की आशा कदापि नहीं छोड़नी चाहिए"।

यह सुन महाराज ने आतुरता से कहा "तो, क्या मित्र! यह तुम ठीक कहते हो? और क्या तुम कोई ऐसा प्रयत्न कर सकते हो कि जिससे हम पुनः मालविका के मिलाप से अपने इस तपे हुए हिये को शीतल कर सकेंगे?"

"हां, हां, अवश्य"—इतना कह कर गौतम ने महाराज के कान में कुछ धीरे से कहा, जिसे सुन वे फड़क उठे, और गौतम का हाथ पकड़ कर बोले, "वाह वाह! शाबाश मित्र। तुमने तो इस समय बहुत ही अच्छी युक्ति निकाली! यदि ईश्वरेच्छा से कहीं तुम्हारा सोचा हुआ यह बानक बन जाय तो, हक़ीक़त में, बड़े ही आनन्द की बात हो; और किसीको तुम्हारी इस विचित्र काररवाई का पता भी न लगे। तो फिर अब इस काम में विशेष देर करने की कोई आवश्यकता नहीं है"।

इसके अनन्तर महाराज और गौतम में बहुत सी बातें होती रहीं। और फिर महाराज उठकर अन्तःपुर में महारानी धारिणी के पैर कै चोट का हाल पूछने चले गये। उनके जाने के थोड़ी ही देर के बाद गौतम ने जयसेना और ध्रुवसिद्धि को अनेक प्रकार की बातों के उपरान्त अपने मत में कर लिया, जिसका हाल आगे चल कर पाठकों पर स्वयं खुल जायगा।

उधर महाराज महल में पहुंच कर महारानी धारिणी से चोट का हाल पूछने, और और भी अनेक प्रकार की बातें करने लगे। वहां पर योगिनी गौतमी भी बैठी थी; और और भी कई लौंडियां महारानी की सेवा टहल कर रही थीं, कि इतने ही में अङ्गूठे में जनेऊ को लपेटे मारे घबराहट के, हाय हाय करता हुआ, गौतम भी वहीं पर जा पहुंचा, और ज़ोरे से चिल्ला कर महाराज से कहने लगा "हाय! हाय! मैं मरा! अरे मुझे कोई बचाओ! बचाओ"। यह सुन महाराज ने कहा–"ठहरो, घबराओ मत, हाल तो कहो, क्या हुआ?" गौतम कहरता हुआ बोला–'महाराज आप अन्तःपुर में जब आये तब मैं बगीचे में इस लिए पहुंचा, कि महारानी की भेंट के लिए दो उत्तम फूल तोड़ लूं तो चलूं। यह सोच ज्योंही मैंने केतकी के फूल तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाया, त्योंही काल ने सांप का रूप धर कर मेरे अङ्गूठे में डस लिया। अरे! हाय! देखो उसके दो दांत यहां इस अङ्गूठे में गड़े हुए हैं, जिन में से, यह देखो, रुधिर बह रहा है"।

गौतम की ये बातें सुन महारानी धारिणी बहुत ही घबरा गईं और दुःख से कहने लगीं–"हाय! हाय! अरे इस बेचारे ब्राह्मण को मेरे ही कारण सांप ने काटा। हे परमेश्वर! इसे तू जल्दी चङ्गा कर; नहीं तो इसकी हत्या मेरे ही सिर पड़ेगी; क्योंकि यह बेचारा मेरे ही लिए फूल लाने गया था"।

इस पर योगिनी ने कहा–"मेरे जान तो, जहां तक जल्द हो सके, वे सब उपचार करने चाहिएँ जो सांप के काटने पर प्रायः किये जाते हैं। अर्थात् घाव का जलाना, खून का निकालना, और उस अङ्ग का काट देना, जिसमें कि सांप ने काटा हो-इत्यादि"।

यह सब सुनकर महाराज ने कहा–"कि यह भी सम्भव हो सकता है कि उस सांप में विष न हो; क्योंकि बहुतेरे ऐसे सर्प भी होते हैं कि जिनमें विष बहुत कम या नहीं ही होता। कदाचित् उन्हीं-में से किसीने काट लिया हो"।

महाराज के इतना कहने पर साथ ही गौतम ने (झुंझला कर) कहा–'आप क्या कहते हैं? हाय! मेरे तो अङ्ग अङ्ग टूटे जाते हैं, और घुमटे पर घुमटा चला आता है। देखो अब मैं गिरा चाहता हूं। अब मुझे इस समय एक बात कहनी है। महारानी जो कदाचित् मैं न बचूं, इस लिए, हाथ जोड़, निवेदन करता हूं कि मुझसे जो कुछ अपराध बन पड़ा हो, उसे आप कृपापूर्वक क्षमा करेंगी"।

महारानी ने कहा–"राम। राम। यह क्या तुम कहते हो, अरे! तुम सौ बरस जीओ। भला तो क्या अब कोई उपाय ऐसा नहीं है, कि जिससे यह ब्राह्मण चङ्गा हो जाय"?

महाराज ने कहा–"हाँ, हमें अभी याद आया। (जयसेना की ओर देख कर) देखो, तुम जलदी जाकर विषवैद्य ध्रुवसिद्धि को बुला लाओ। निश्चय है कि वह आकर शीघ्र ही हमारे मित्र गौतम को चङ्गा कर देगा"।

महाराज की आज्ञा पाकर जयसेना ध्रुवसिद्धि के बुलाने के लिए चली; और यह कहती गई कि तब तक इनकी (गौतम) सेवा शुश्रूषाकर बहलाये रहो कि जब तक मैं वैद्य को ले आऊं। पर, गौतम का बहलाना कैसा? वह तो इस प्रकार कोलाहल करने लगा कि तमाम लोग घबरा उठे। महाराज, महारानी, और योगिनी कितनाहीं उसे ढाढस देते; पर वह किसीकी भी कुछ नहीं सुनता और अपनी ही हाय हाय मचाकर सबको परेशान करता। इतने में जयसेना ने आकर महाराज से निवेदन किया कि "कृपानाथ! ध्रुवसिद्धि कहता है कि गौतम को यहां ही उठालाओ तो हम अभी बात को बात में उसे चङ्गा करदें।' यह बात सब को पसन्द आई, और सबकी मति से गौतम वैद्य के पास पहुंचाया गया। इसके थोड़ी ही देर के बाद फिर जयसेना ने महाराज से आकर कहा कि ध्रुवसिद्धि कहता है कि गौतम की नस नस में इतना विष असर कर गया है कि जब तक नागमुद्रा द्वारा जलकुम्भ बना कर गौतम को न पिलाया जायगा तब तक इसके बचने की आशा करना दुराशा मात्र है।

इतना सुनते ही महारानी धारिणी ने अपने हाथ की वह अङ्गूठी, कि जिसमें नागमुद्रा जड़ी थी, और जो एक दिन कुमुदिका के पास देखी गई थी, उतार कर जयसेना के हाथ में दे दिया और कहा कि–"इसे ले और ध्रुवसिद्धि को दे कर कहना कि जो उचित हो करें"।

इस पर महाराज ने कहा–"अच्छा ले जा; पर गौतम के आरोग्य होते ही इसे जलदी ही फेर लाना"।

इसके अनन्तर जयसेना तुरन्त ही अङ्गूठी लिए चली गई; और थोड़ी ही देर में लौट आकर महाराज से उस ने निवेदन किया कि ध्रुवसिद्धि ने यह वचन दिया है कि अब नागमुद्रा के मिल जाने से गौतम बहुत जल्द अच्छा हो जायगा"।

इसके उपरान्त जयसेना ने महाराज से कहा कि मन्त्री जी निवेदन करते हैं कि राजकाज के कई एक आवश्यक काम ऐसे आ पड़े हैं, कि जिनका देखना बहुत ज़रूर है। इस लिए यदि महाराज

कृपाकर थोड़ी देर के लिए दर्शन दें तो बड़ी बात हो" । यह सुनकर महाराज तो चुप रहे; पर महारानी ने आवश्यक समझ उनके वहां जाने की अनुमति दी । तब वे महारानी से विदा हो, जयसेना के साथ, अन्तःपुर से बाहर आये; और एकान्त में पहुंच कर जयसेना से बोले—"वाह, शाबाश! बेशक तुम लोगों ने अपना अपना काम बड़ी हीं खबी और उत्तमता के साथ किया; पर अब यह कहो कि हमारा मित्र गौतम नागमुद्रावाली अङ्गूठी लिये इस समय कहां है ?"

प्रतिहारी ने कहा "आप मेरे साथ प्रमदवन के उस कुञ्ज की ओर चलें, जो समुद्रगेह के समीप है। मुझे निश्चय है कि अब गौतम ने मालविका और वकुलावलिका को कैद से छुड़ा लिया होगा, क्योंकि मुझे गौतम ने वहीं पर श्रीमान् को ले चलने के लिए कह रक्खा है"।

[८]

जयसेना महाराज के साथ समुद्रगेह के पास उस कुञ्ज में पहुंची जिसका हाल हम ऊपर लिख आये हैं। वहां पहुंच कर महाराज ने गौतम को देख बड़े हर्ष के साथ कहा "अहा! मित्र! कहो, कहो क्या समाचार हैं ?"

गौतम ने भी मुसका कर कहा "सब ठीक है"। इस पर महाराज ने आग्रहपूर्वक बन्दीगृह से बन्दियों के छुड़ाने की कथा कहने का अनुरोध किया। तब गौतम ने कहा—"महाराज, मैंने नागमुद्रा के कारण बड़ी सुगमता और आसानी से मालविका और वकुलावलिका को छुड़ालिया; और अपना मतलब वकुलावलिका से समझा दिया है। निश्चय है कि वे दोनों बात की बात में समुद्रगेह में आया ही चाहती हैं"।

महाराज ने कहा—"तो उस बन्दीगृह की रखवालिन माधविका ने तो कुछ बखेड़ा नहीं किया न ?"

गौतम—'नहीं, महाराज, कुछ नहीं; क्योंकि उसे तो महारानी की आज्ञा ही थी कि 'हमारी नागमुद्रावाली अङ्गूठी के देखे बिना इन दोनों कैदियों को हरगिज़ न छोड़ना'। फिर जब मैंने उन के आज्ञानुसार अङ्गूठी दिखलाई तो वह क्या कह सकती थी ? और दूसरे, मैंने बात बनाकर उसे यह चकमा भी दिया, कि ज्योतिषियों के कहने से महाराज के अरिष्ट ग्रहों की शांति के लिए सब कैदी छोड़े जा रहे हैं। इस लिए मैं भी इन दोनों की छुट्टी दिलाने के लिए भेजा गया हूं"।

इतने ही में रानी इरावती की चेरी चन्द्रिका फूल बीनती हुई उसी ओर आ निकली, जिसे देख महाराज और गौतम दोनों ही ओट में हो गये, कि कहीं वह देख न ले; क्योंकि कामुकों और चोरों के लिए चन्द्रिका तो विष सी होती है। किन्तु चन्द्रिका की चकोर सी आँखों ने कदाचित् गौतम को देख लिया; जिससे क्या क्या गुल खिला, उसे हम आगे चल कर प्रगट करेंगे।

इधर वकुलावलिका मालविका को भली भांति सँवार कर समुद्रगेह में लाई थी; और महाराज के चित्र को दिखाकर उसका जी बहला रही थी। मालविका ने पहिले तो उस चित्र को भ्रांति से महाराज ही समझा; इस लिए कुछ मान किया। पर जब हक़ीक़त में उसने यह जान लिया, कि यह केवल प्रतिमूर्त्ति वा चित्र ही चित्र है, तब बड़ी उदास हुई।

इसके अनन्तर गौतम की सम्मति से महाराज भी वहां जा पहुंचे जहां वकुलावलिका के साथ मालविका चित्रपट लिए अनेक प्रकार की चिन्ता और भावना करती हुई बैठी थी। गौतम, समुद्रगेह के द्वार पर, पहरा देने की इच्छा से टहलते टहलते लेट रहा। यों गौतम को वहां से पहरा देने के मिस से खसकता देख वकुलावलिका भी, महाराज के पहुंचते ही, कोई छल करके वहां से टल गई। तब निराला पाकर महाराज मालविका से आनन्दपूर्वक प्रेमालाप करने लगे।

यद्यपि गौतम समुद्रगेह के द्वार पर चौकसी वा पहरा देने के लिए गया, पर वहां पर लेट रहा, और लेटते ही ऊँघने और बर्राने लगा। यह गुण

या दुर्गुण, जो कुछ हो, उसमें था, कि जहां वह ऊँघा उसने बर्राना प्रारम्भ किया।

इधर चन्द्रिका ने फूल ले कर लैाटती बार गौतम के समुद्रगेह के द्वार पर लेटे हुए देख कर तुरन्त अपनी स्वामिनी रानी इरावती से जा कहा। रानी इरावती ने आज यह भी सुन रक्खा था कि "गौतम के सांप ने काट लिया है"। और यह भी उन्हें ख़बर मिल चुकी थी, कि वह वैद्य ध्रुवसिद्धि की चिकित्सा से अच्छा हो गया है। यह सब जान और यह सुन कर कि गौतम समुद्रगेह के द्वार पर लेटा हुआ है, उसे देखने के लिए, वे अपनी टहलिनी निपुणिका के साथ वहां आ पहुंचीं। जिस समय वे गौतम के पास पहुंचीं, ठीक उसी समय, संयोगात् वह बर्रा उठा। उसके बर्राने में "मालविका" का नाम इरावती ने सुन लिया। बस, यह सुनते ही वे अत्यन्त चिढ़ गईं। तिस पर घृताहुति की भांति उनकी लैांडी निपुणिका ने कहा—"देखिए, यह खोटा बहाना किसके लिए और क्या कह रहा है"।

यह सुन, और देख कर, रानी इरावती वहां ठमक गईं। इतने ही में फिर वह बर्राने लगा "वाह रे मैं! देखो कैसा अँगूठे में केतकी के काँटे के चुभा कर मेरा खून का निकालना; फिर साँप के काटने का बहाना करना; फिर ध्रुवसिद्धि और जयसेना के साथ कर महारानी धारिणी की नागमुद्रावाली अँगूठी के उड़ाना; उसकी सहायता से मालविका और वकुलावलिका के जेलख़ाने से साफ़ छुड़ा लाना; और अपने प्यारे मित्र महाराज से मालविका के मिला देना। यह सब मेरे ही बायें हाथ का करतब नहीं है ते क्या है?"

इतना सुनते ही इरावती ने समझ लिया कि "यह सब बखेड़ा इसी दुष्ट ब्राह्मण ही का रचा हुआ है और साँप का काटना केवल बहाना ही मात्र है। और जब कि यह यहां यें बर्रा रहा है तब निश्चय होता है कि, यहीं कहीं पर, महाराज भी मालविका के साथ अवश्य छिपे प्रेमालाप करते होंगे।

इसपर निपुणिका ने कहा "सत्य है; आपका सोचना बहुत ही ठीक है। देखिये मैं इसे छकाती हूं और इसकी सारी कलई खोल इसकी इस ढिठाई का मज़ा चखाती हूं। यह साँप से बहुत डरता है। इसलिए मैं इसके ऊपर एक रस्सी का टुकड़ा फेंकती हूं। फिर देखिये यह कैसा चिहुंकता और उछल कूद करता है। इसके ऐसा करने पर निश्चय है, कि इसके चिल्लाने के सुन कर, महाराज यदि यहीं कहीं पर छिपे हैं ते अवश्य प्रगट होंगे।

यें कह कर उसने एक रस्सी गौतम के ऊपर फेंक ही ते दी, जिसके बदन पर पड़ते ही वह सचमुच चिल्ला कर उठ बैठा; और उछल कर, कुछ दूर भाग, कहने लगा कि "अरे! मरे! दौड़िये रे, साँप! साँप!"

उसे इस प्रकार उठकर चिल्लाता हुआ देख इरावती ते अपनी लैांडी के साथ वहीं लता की ओट में छिप रहीं; और महाराज समुद्रगेह के बाहर निकल आये। उनके पीछे मालविका भी चली आई। वकुलावलिका भी, जो वहीं कहीं पर थी, वहां आ पहुंची। इन सब लोगों के इकट्ठे होने पर इरावती ने भी निकल और आगे बढ़ कर वकुलावलिका से कहा—"वाहरी कुटनी! इस काम में ते तू अब बड़ी चतुर हो गई है"। तब गौतम की ओर देखकर रानी ने कहा—"क्यों रे ढीठ बह्मने! क्या ऐसे कामों में तूने अपना बड़प्पन समझ रक्खा है?" तथा महाराज की तरफ मुख फेर कहा—"आप धन्य हैं! आपके इस प्रकार लुका चोरी करने के लिए बहुत सी बधाइयाँ हैं"।

एकाएक इस तरह इरावती के पहुंच जाने और फिटकारने से, सब के सब, एक दम घबरा गये; और मारे डरके मालविका का ते बुरा हाल हुआ। उस समय महाराज या गौतम के कुछ भी नहीं सूझा कि, अब, इस समय, वे कैान सी बात गढ़ें, और क्योंकर अपनी भलमनसी ज़ाहिर करें; किन्तु उस समय अनायास एक ऐसा ढङ्ग निकल आया कि जिससे किसीके कुछ कहने

सुनने या सफ़ाई दिखलाने का मौक़ा ही नहीं मिला। अर्थात् जयसेना ने आकर महाराज से कहा कि "कुमारी वसुलक्ष्मी बन्दर को देख कर इतनी डर गई हैं, कि बड़ी महारानी के बहुत कुछ फुसलाने पर भी शांत नहीं होतीं"।

यह सुनते ही महाराज कुमारी को बहलाने के लिए अन्तःपुर में चले गये, और इरावती अपनी दासी के साथ अपने महल में गईं। तथा मालविका और वकुलावलिका, गौतम के साथ, अन्तःपुर की ओर चलीं। चलते चलते जब गौतम उस लाल अशोक के पास पहुंचा, जिसे आज के पांच दिन पहिले, मालविका ने अपने बायें पैर से छुआ था, तब क्या देखता है कि वह सिर से पांव तक कलियों से भर गया है। उसे देख गौतम ने मालविका से कहा कि-"लो, अब कोई चिन्ता न करो; बड़ी महारानी ने लाल अशोक के फूलने पर तुम्हें मनमाना पारितोषिक देने को कहा ही है। तो अब क्या चिन्ता है? अब तुम उनसे अपनी इच्छानुसार अपना मनोरथ पूर्ण कर लेना"।

इसके बाद उसी राह से सारसक नामक एक कुबड़ा हाथ में एक मोहर किया हुआ पुलिन्दा लिये हुए चला आता था। उसे देख बाग़ की मालिन मधुकरिका ने कहा-"कहो जी! सारसक! तुम्हारे हाथ में यह क्या है?"

सारसक-"यह एक महीने का दान है, जो पढ़े लिखे ब्राह्मणों को बड़ी महारानी प्रतिमास तब से बराबर देती आती हैं, जब से कि सेनापति ने कुँवरजी को घोड़े की रखवाली के लिए भेजा है। सो उनके कल्याण के लिए यह दान मिला है।"

यह कह कर सारसक चला गया; और मालिन आगे बढ़ी। तब गौतम से उसकी भेट हुई। गौतम के पोछे पीछे मालविका और वकुलावलिका थीं। गौतम के साथ मालविका को देख मधुकरिका ने आश्चर्य से पूछा-"कहो गौतमजी! ये तो बड़ी महारानी के कोप के कारण बंदीगृह में पड़ी हुई थीं; सो छूट कैसे गईं?"

इसपर, गौतम ने अपने करतब की बड़ाई कह सुनाई, जिसे सुन मधुकरिका ने कहा-"तो अब कोई चिन्ता नहीं; क्योंकि लाल अशोक फूल गया है; इसलिए बड़ी महारानीजी अपना वचन ज़रूर ही निबाहेंगी; और इसी बात की ख़बर देने के लिए मैं उनके पास जा रही हूं।"

निदान मधुकरिका एक ओर और मालविका तथा वकुलावलिका को लिए हुए गौतम दूसरी ओर गया। [असम्पूर्ण।

जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी।

तिबत।

तिबत की उंचाई समुद्रतल से १४,५०० फुट है। उसके उत्तर में क्यूलन और दक्षिण में हिमालय पर्वत हैं। पृथ्वी पर जितने देश हैं तिबत की बराबर एक भी ऊंचा नहीं है। इसे पर्वतमय कहना चाहिए। इसमें पहाड़ियों और पर्वतश्रेणियों की बड़ी प्रचुरता है। बर्फ़ से ढकी हुई हिमालय की चोटियां चारों ओर गगन-चुम्बन करती हैं। यह देश ऐसा बीहड़ है कि इसके रास्ते निहायत ही ख़राब हैं। इससे प्रवास करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है।

तिबत के लोग बौद्ध-धर्म्म के अनुयायी हैं। वे दूसरे देशवालों को अपने यहां नहीं आने देते और न उनसे कोई सम्बन्ध रखना चाहते हैं। इसीकारण से परकीय देशवालों को तिबत-सम्बन्धी बहुत कम ज्ञान है। तिबत की राजधानी लासा नगर है। लासा में दो पुरुष सर्व-प्रधान हैं। वे लामा कहलाते हैं। एक लामा राज्य-सम्बन्धी है; दूसरा धर्म्म-सम्बन्धी। पिछले लामा का नाम दलाय लामा है। इस लामा का दर्शन अन्य देशवालों के लिए बहुत ही दुर्लभ है। तिबत में जितने महन्त, पुरोहित या धर्म्माध्यक्ष हैं, सब लामा कहलाते हैं।

तिबत जाने में अनेक कष्ट, कठिनाइयां और बाधायें हैं। एक तो पथरीला और जंगली देश;

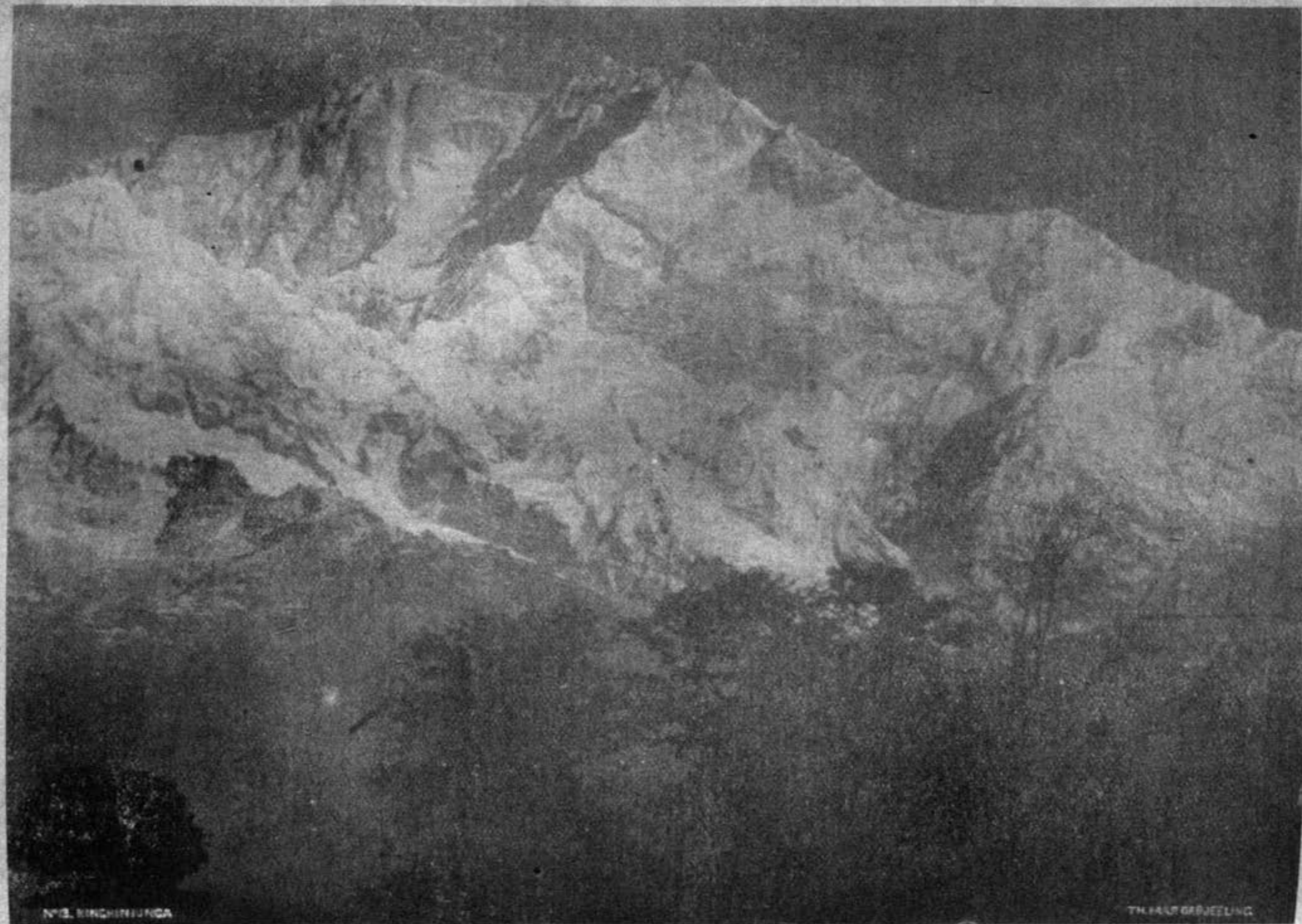

हिमालय की बर्फ़ से ढकी हुई एक चोटी ।

दूसरे चोर ग्रैार लुटेरों की ग्रधिकता; तीसरे वहां न जाने की प्रतिबन्धकता; चैाथे जाड़े का प्राचुर्य्य। तथापि ग्राज तक बाईस तेईस योरप-निवासी ग्रैार दो तीन हिन्दोस्तानी लासा तक हो ग्राये हैं ग्रैार ग्रनेक पुस्तकें तिबत-सम्बन्धी लिखी जा चुकी हैं। पहले योरोपियन प्रवासी ने तिबत में १३२५ ईसवी में सफ़र किया। उसके बाद, समय समय पर, लोग वहां गये ग्रैार वहां की ग्रनेक बातों में विज्ञता प्राप्त की। कुछ दिन हुए लैण्डर नामक एक साहब तिबत पधारे थे। ग्राप पर जो जो ग्रापत्तियां ग्राईं उनका वर्णन सुनने से पत्थर भी पिघल जाय। उनकी वहां बड़ी ही दुर्दशा हुई; उनका शरीर तक छिन्न भिन्न कर डाला गया। तथापि वे जीते जागते वापस ग्राये। उन्होंने ग्रपने प्रवास का जो वृत्तान्त लिखा है वह पढ़ने लायक़ है। ह्यू, नाइट, गार्डन ग्रैार मारखम वग़ैरह ने भी तिबत पर किताबें लिखी हैं; परन्तु लैण्डर ग्रैार कप्तान व्यल्बी की किताबें बहुत मनोरञ्जक हैं। कप्तान व्यल्बी ने १८९६ ईसवी में लद्दाख़ से चल कर, उत्तरी तिबत होते हुए, पेकिन तक सफ़र किया। मई में वे लद्दाख़ से रवाना हुए ग्रैार दिसम्बर में हांगकांग के रास्ते कलकत्ते वापस ग्राये। छ महीने तिबत पार करने में उनको लगे। उनकी यात्रा-सम्बन्धिनी कठिनाइयों का वर्णन पढ़ते वक्त रोमाञ्च हो ग्राता है ग्रैार उनके साहस, धैर्य्य तथा कष्ट-सहिष्णुता का विचार करके चित्त ग्राश्चर्य्यसागर में डूब जाता है। चार महीने तक ग्रसबाब ग्रपनी पीठ पर लाद कर उनको पैदल चलना पड़ा। खाने को सिवा जङ्गली जीवों के मांस के ग्रैार कुछ उनका नसीब नहीं हुग्रा। कई महीने उनको मनुष्य-जाति के दर्शन नहीं हुए। परन्तु धन्य है उनके साहस को! उन्होंने जो प्रण किया था उसे पूरा ही करके छोड़ा।

तिबत मिशन के नायक कर्नल यंगहसबण्ड ने एक बार पामीर ग्रैार तिबत के कुछ हिस्से में सफ़र किया था। उस समय ११वीं बङ्गाल लैंसर्स का शाहज़ादमीर नामक दफ़ेदार उनके साथ था। भाग्यवश व्यल्बी साहब को भी यह दफ़ेदार मिल गया था। उससे उनको बड़ी मदद मिली।

तिबत में चीन का सार्वभैामत्व है; वह चीन का करद राज्य है। हर साल उसे चीन को कर देना पड़ता है। तिबत का राज्यसूत्र चीन नरेश ग्रैार उनके मन्त्रिमण्डल के हाथ में रहता है। ग्रावश्यकतानुसार वह पेकिन से हिलाया जाता है। चीनियों को छोड़कर तिबतवाले ग्रैार किसी को ग्रपने देश में नहीं ग्राने देते। तिबतवाले शायद यह समझते हैं कि ग्रपने से ग्रधिक सज्ञान लोगों को ग्रपने देश में ग्राने देने से वे लोग धीरे धीरे तिबत का ग्राधिपत्य ग्रपने हाथ में कर लेंगे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पहले गवर्नर जनरल हेस्टिंगज़ के समय तक तिबत का बहुत ही कम हाल इस देशवालों को मालूम था। तिबत ग्रैार हिन्दोस्तान से किसी तरह का सम्बन्ध तब तक न था। परन्तु हेस्टिंगज़ ने रङ्गपुर के रहनेवाले पुरन्दरगिरि नामक सन्यासी को तिबत के प्रधान लामा के पास भेजा। इस सन्यासी ने ग्रपना काम सफलता पूर्वक किया ग्रैार वहां से सकुशल लैाट भी ग्राया। परन्तु तिबत के सम्बन्ध से बाबू शरच्चन्द्र दास ने, इस समय, बहुत बड़ा नाम पाया है। १८८२ में दार्जिलिंग से रवाना होकर वे लासा तक चले गये; लासा में कई महीने तक वे रहे भी। उन्होंने तिबत पर जो पुस्तक लिखी है उसका सब कहीं बड़ा ग्रादर है। इस उपलक्ष में गवर्नमेण्ट ने उनको रायबहादुर की पदवी देकर ग्रपनी प्रसन्नता प्रकट की। बैाद्ध-शङ्कराचार्य्य दलाय लामा के विषय में दास बाबू ग्रपनी किताब में एक जगह लिखते हैं—

"हमको दलाय लामा के दर्शन हुए। उनकी उमर, इस समय, ग्राठ वर्ष की है। हमने देखा कि वे एक उच्च ग्रैार सुसज्जित सिंहासन पर बैठे हैं। उनके दर्शनों के लिए दर्शक ग्रैार पूजक लोग बड़ी भाव-भक्ति से एक एक करके भीतर जाते थे।

वहां पर लामा के चरणस्पर्श करने पर लामा के अधिकारी उनको आशीर्वाद देते थे। जब हम लामा के पास से वापस आकर अपनी जगह पर बैठे, तब हमको लामा का प्रसादरूप थोड़ा सा चाय मिला। उसे हमने पी लिया; परन्तु उनके नैवेद्य में से जो भात हमको दिया गया वह हमने नहीं खाया; उसे हमने अपने पास रख लिया। इसके बाद लामा के प्रधान पुरोहित ने कुछ मन्त्र पाठ करके लामा के चरणों पर अपना मस्तक रक्खा। जब यह हो चुका तब उसने सबको आशीर्वचन कह कर सभा बरख़ास्त की"।

कवागुची केकय नामक एक जापानी भिक्षु तिबत में बहुत दिन तक रहा है। उसने भी अपने प्रवास का वर्णन प्रकाशित किया है। तिबत में जगह जगह पर मठ हैं। "ओं मणिपद्मे हूं" तिबतियों का प्रधान मन्त्र है। लम्बे लम्बे काग़ज़ों पर मन्त्र लिखकर वे काग़ज़ एक प्रकार के पहियों पर लपेट दिये जाते हैं। ये प्रार्थना-चक्र लकड़ी या पत्थर के खम्भों पर लगे रहते हैं और हवा के ज़ोर से घूमते हैं। पहिए के साथ काग़ज़ का टुकड़ा भी घूमा करता है। इस घूमने को तिबतवाले मन्त्र की आवृत्ति मानते हैं। तिबत में कई एक मठ और मन्दिर बहुत बड़े बड़े हैं। उनमें पाठशालायें भी हैं; पुस्तकालय भी हैं; और शिक्षक लामा तथा विद्यार्थियों के रहने के स्थान भी हैं।

जिस समय अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट ने सिकिम पर अपना प्रभुत्व जमाया, उस समय, पहले पहल, तिबत और भारतवर्ष के सम्बन्ध का सूत्रपात हुआ। एक सन्धिपत्र लिखा गया। उसपर चीन और भारतवर्ष की गवर्नमेण्ट ने हस्ताक्षर किये। परन्तु इस सन्धिपत्र के नियम निर्विवाद न हुए; बहुत सी झगड़े की बातें रह गईं। कुछ दिनों में याटुङ्ग नामक नगर में तिबतवालों ने एक मण्डी खोली। याटुङ्ग तिबत की सीमा के भीतर है। वहां पर तिबत और हिन्दोस्तान, दोनों देशों, के व्यापारियों को व्यापार करने की अनुमति मिली। परन्तु सन्धिपत्र के विवादास्पद नियमों का निबटारा न हुआ। झगड़े की जड़ें बनी रहीं। उन्हीं को आधार मान कर जनरल मैकडोनल्ड और कर्नल यङ्गहसबैण्ड ने ससैन्य और सशस्त्र तिबत में प्रवेश किया है। जब पहले पहल तिबत मिशन ने अपना अस्तित्व प्रकट किया तब यह बात कही गई कि वह सर्वथा शान्तिमूलक है; वह अशान्ति अथवा विद्रोह का कारण न होगा। परन्तु इस मिशन ने अब विकरालरूप धारण किया है। तुना में तिबतवालों को जो हत्या हुई है उसने इसके शान्त-स्वरूप को बिलकुल ही बदल कर और का और कर दिया है। ज्ञानसी में, इस समय, यह मिशन रुका पड़ा है। इधर इसे लासा की तरफ़ आगे बढ़ने की आज्ञा मिल चुकी है, उधर तिबतवाले इसका अवरोध करते हैं। मामला टेढ़ा है। जान पड़ता है कि यह मिशन शीघ्र ही एक भयङ्कर चढ़ाई का रूप धारण करैगा।

इस मिशन के सम्बन्ध में इस समय पारलियामेण्ट में ख़ूब वाद विवाद हो रहा है। आसाम के भूतपूर्व चीफ़कमिशनर काटन साहब इस विवाद में अग्रणी हैं। वे इस मिशन का भेजा जाना पसन्द नहीं करते। इस मिशन के भेजे जाने के कई कारण बतलाये जाते हैं; उनमें से कुछ कारण एक दूसरे के विरोधी भी हैं। पहला कारण यह बतलाया जाता है कि तिबतवालों ने सन्धिपत्र के नियमों की पाबन्दी नहीं की; दूसरा यह कि मिशन के अफ़सरों से मिलकर झगड़े की बातों को तै करने के लिए तिबतवालों ने अपना कोई अफ़सर नहीं भेजा; तीसरा यह कि तिबतवाले भीतर ही भीतर रूस से मिले हैं; चौथा यह कि तिबत की सीमा हिन्दोस्तान की सीमा से मिली हुई होने के कारण तिबत में अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट के स्वत्वों की रक्षा आवश्यक है। परन्तु काटन और स्विनी आदि विचक्षण पुरुषों का मत है कि ये कारण बहुत ही निर्बल हैं; सन्धिपत्र के नियमों का पालन होना और न होना बराबर है; तिबत और भारतवर्ष

का व्यापार बहुत कम है; इस मिशन का भेजा जाना रूस और चीन दोनों राज्यों को पसन्द नहीं।

तिबत के विषय में एक नई बात सुन पड़ी है। वह यह है। कोई २० वर्ष हुए घोमंग लोबजंग नामक एक आदमी मंगोलिया से लासा को आया। वहां वह दाबङ्ग के मठ में वेदान्त का अध्यापक नियत हुआ। बहुत दिनों तक उसने अपना काम बड़ी योग्यता से किया। ५२ वर्ष की उमर में वह रूस के दक्षिणी प्रान्तों में चन्दा एकत्र करने के इरादे से गया। उन प्रान्तों में बहुत बौद्ध रहते हैं। यह बात १८९८ की है। इस सम्बन्ध में उसे सेण्टपिटर्सबर्ग को भी जाना पड़ा। वहां रूसियों ने हेलमेल पैदा करके उसे अपने वश में कर लिया। उसको उसका कर्तव्य अच्छी तरह समझा दिया गया। वह रूस की तरफ़ से बहुत सी बेशक़ीमती चीज़ें दलाय लामा को उपहार में लाया। लामा महोदय उपहार से बहुत प्रसन्न हुए। घोमङ्ग ने कहा कि यदि आप एक बार सैंटपिटर्सबर्ग पधारें तो तिबत और रूस में हार्दिक मैत्री हो जाय; तिबत की रक्षा का भार रूस अपने सिर पर ले ले; और सम्भव है कि ज़ार महोदय किरिस्तानी मत छोड़ कर बौद्ध हो जायँ; क्योंकि किरिस्तानी मत में उनका बहुत कम विश्वास है! लामा ने इस बात को स्वीकार कर लिया; उसने प्रसाद के तौर पर कुछ चीज़ें भी ज़ार को भेजीं; परन्तु उसका रूस की राजधानी को जाना दूसरे धर्म्माध्यक्षों को पसन्द नहीं आया। इससे दलाय लामा को वह विचार छोड़ना पड़ा।

घोमङ्ग लोबजङ्ग को किसी कारण से फिर रूस जाना पड़ा। फिर भी रूसियों ने उसे कांपे में फांसा। इस बार वह एक पत्र ज़ार की तरफ़ से लाया जिसमें लामा महोदय को यह सुझाया गया था कि वह अपना वकील सेण्टपीटर्सबर्ग को भेजैं, रूस से बाला बाला पत्र-व्यवहार करैं, और चीन की आधीनता छोड़ कर स्वतन्त्रतापूर्वक रूस से सम्बन्ध रक्खैं। लामा ने यह बात मंज़ूर की। सञ्चिद नामक एक प्रसिद्ध महन्त वकील बनाया गया। घोमङ्ग के साथ वह सेण्टपिटर्सबर्ग गया। उसने लामा का दस्तख़ती पत्र ज़ार को दिया। लामा की बहुत सी शर्तैं रूस ने मंज़ूर कर लीं और एक सन्धिपत्र भी लिखा गया; परन्तु यह बात जब चीन को मालूम हुई तब उसने रूस और तिबत की उस काररवाई को रद कर दिया और तिबत पर अपनी सख़्त अप्रसन्नता प्रकट की। अतएव वह बात वहीं रह गई; आगे नहीं बढ़ी। चीन की आज्ञा के बिना तिबत किसी परकीय राजा से सन्धि नहीं कर सकता।

घोमङ्ग का क़िस्सा कहां तक सच है नहीं मालूम। परन्तु रूस के बने हुए शस्त्र जो मिशन को युद्धस्थल में मिले हैं और तिबतियों की युद्ध-पटुता जो, इस समय, देख पड़ रही है, उससे सूचित होता है कि रूस से तिबत का कुछ न कुछ सम्बन्ध, यदि है नहीं, तो रहा अवश्य है।

मत्स्याहारी वनस्पति।

सरस्वती के पाठक इसके पिछले भागों में कई अनोखे वनस्पतियों का वर्णन पढ़ चुके हैं। हम भी आज एक अनूठे पौधे का वृत्तान्त पाठकों की सेवा में निवेदन करते हैं। इसका भी वर्णन सुनकर वे अचम्भे में आजायंगे, और अनन्त स्रष्टाका अद्भुत सृष्टिकौशल देख अवाक् हो जायंगे।

यह वनस्पति इस देश में आज तक नहीं पाई गई है; इस लिए, इसको इस देशमें क्या कहते हैं, सो हम नहीं जानते। हम यहां अपनी ओर से एक कल्पित नाम, "मत्स्यहारी वनस्पति" रखकर इसका परिचय देते हैं।

यह पौधा यूट्रिक्यूलेरिया (Utricularia) जाति का है। यूट्रिक्यूलेरिया शब्द लैटिनभाषा का है। लैटिन में यूट्रिक्यूलस (Utriculus) का

अर्थ कोवा * है और कोवावाली वनस्पतियों की जाति का नाम यूट्रिक्यूलेरिया है। इस जाति के

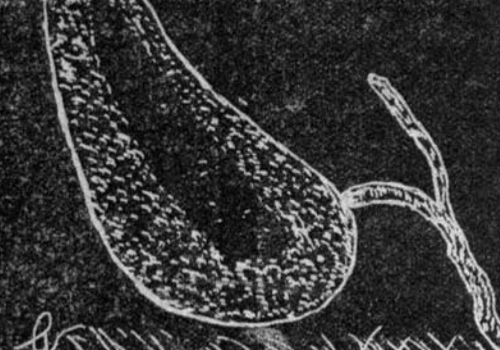

मत्स्याहारी वनस्पति का कोवा।

जिस पौधे का वर्णन यहां किया जाता है वह मछली आदि छोटे छोटे जलजन्तुओं को खा जाता है। पत्तियों और कोवों के गढ़न, रंग और रूप की भिन्नता से इसमें अनेक भेद हैं। योरप और अमेरिका के कई स्थानों में ये ताल में बहुतायत से उपजते हैं। इनकी पत्तियां पानी के भीतर रहती हैं। इन्हीं में से फूल निकलते हैं। इसके और और अंश पानी के ऊपर फैले रहते हैं। इसका आधा भाग तो पानी के भीतर और आधा बाहर रहता है। पत्तियों के ऊपर, पानी के बबूले, या मछली के अण्डों की तरह, एक प्रकार के पानी से भरा हुआ पदार्थ होता है। ऊपर कहे गये कोवे का आकार वृक्ष के प्रकार-भेद से कई प्रकार का होता है। किसी किसीके कोवे अमरूद के बराबर बड़े बड़े होते हैं। यही कोवे के से पदार्थ कीड़े और मछलियों की मृत्यु के द्वार-स्वरूप हैं। पाठकों के देखने के लिये एक बड़े कोवे का चित्र ऊपर दिया गया है। कोवे के पतले भाग की ओर एक मुंह रहता है। मुंह के बाहर चारों ओर रोंगटे वाले कीड़ों की भांति पतले बाल के तुल्य कांटे होते हैं जिनसे मुंह ढका रहता है। मुंह के पीछे चूहा पकड़ने के पिञ्जड़े के दरवाज़े के समान एक किवाड़ा सा सटा रहता है, जो ज़रा धक्का देने से खुल जाता है; परन्तु भीतर की वस्तु, लाख सिर पटकने पर भी, द्वार खोलकर बाहर नहीं निकल सकती। यह किवाड़ इतना पतला और स्वच्छ होता है कि कोवे के भीतर का पानी बाहर से स्पष्ट देख पड़ता है। डारविन साहब कहते हैं कि इसी उज्वलता से मोहित होकर कीट-पतंगादि खिंचकर इसके भीतर चले जाते हैं। जो हो और जैसे हो, पानी के छोटे छोटे जीव ज्यों ही उस मुंह के पास आते हैं त्यों ही बाल के समान कांटों के द्वारा खिंचकर वे कोवे के मुंह के भीतर तुरन्त और सहज ही में चले जाते हैं।

पहले लोग समझते थे कि उक्त कोवे में वायु भरी रहने से यह पानी पर उतराया करता है; परन्तु अब बहुत खोज करने पर यह निश्चय हो गया है कि कोवे में पानी भरा रहता है। आजकल के उद्भिद्विद्या के पण्डितों ने यह भी निश्चय किया है कि यह कोवा केवल वृक्ष के ऊपरी अंश को पानी पर उठाये रहने ही का काम नहीं करता, वरन इससे और और काम भी निकलते हैं। यही कोवा इस पौधे का पाक-यन्त्र और खाने की चीज़ों के पकड़ने के लिये जाल का काम करता है। मछली के अण्डे और कीट पतङ्ग आदि जीव अकस्मात् आकर इस कोवे में चले जाते हैं। अमेरिका के ट्रीट साहब और योरप के डारविन तथा और और पण्डितों ने बहुत परीक्षा करके यह ठहराया है कि कार्प (Carp) नाम की मछलियों के अण्डे इसके भोजन की विशेष वस्तु हैं। इसीसे जिस तालाब में ये पौधे पैदा होते हैं उसमें कार्प मछलियां बहुत कम रहती हैं। कीट पतंग आदि जब

* गर्भ के समान एक थैली; अथवा झिल्लीदार पतले चमड़े की थैली की तरह एक वस्तु।

कोषे में घुसजाते हैं तब वे निकलने को चेष्टा करते हैं, पर बाहर निकलने नहीं पाते। अन्त में वे अम्लजान वायु के न रहने से दम घुट कर मर जाते हैं। उनकी मृतदेह इस पौधे के उदरस्थ पाचक रस के द्वारा जल का रूप धारण कर इसकी पुष्टि करती है।

पाठक! ऐसे ही विषय—यही सब कौतूहल की बढ़ानेवाली विलक्षण बातें—इन्हीं सब अनोखे पदार्थों का अनुसन्धान—जगत्कर्ता के विषय में एक प्रकार का विस्मय-पूर्ण कृतज्ञ भाव हृदय में उत्पन्न करते हैं। देखिये तो कैसे कौशल से आपस में वनस्पति जीवों के और जीव वनस्तियों के भोजन को सामग्री बन कर एक दूसरे को शरीर-पुष्टि द्वारा सृष्टि की संरक्षा करते हैं। अहा! जगदीश्वर एक के परमाणु दूसरे में मिलाकर क्याही आश्चर्य्य खेल खेल रहा है।

मोदते भगवान्भूतैर्बालः क्रीड़नकैरिव।

यशोदानन्दन अखौरी।

सामुद्रिक सुरङ्ग और समुद्रोदरगामिनी डोंगी।

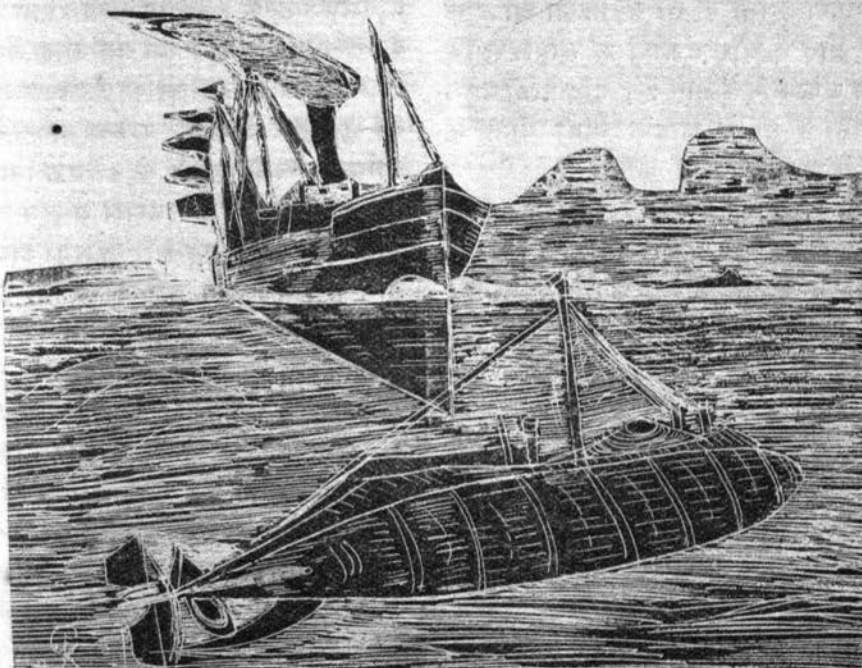

इस समय रूस और जापान में जो युद्ध हो रहा है उसमें अनेक बड़े बड़े जहाज़ पानी के भीतर सुरङ्ग के द्वारा उड़ा दिये गये हैं। समुद्र में सुरङ्ग लगाना बिलकुल नई बात है।

जब दो देशों में लड़ाई शुरू होती है तब बन्दरगाहों की शत्रु से रक्षा करने के लिए जो अनेक प्रकार के उपायों की योजना की जाती है, उनमें से सामुद्रिक सुरङ्ग का लगाना भी एक उपाय है। लोहे की बड़ी बड़ी और बहुत मज़बूत सन्दूक़ें बनाई जाती हैं। उनमें गनकाटन, डायनामाइट इत्यादि भयङ्कर ज्वालाग्राही पदार्थ भर दिये जाते हैं। उनके ऊपर से जब कोई जहाज़ जाता है और उनके

नोचे का हिस्सा उन सन्दूक़ों को स्पर्श करता है तब वे फौरनही फूट जाती हैं और उनके भीतर भरा हुआ पदार्थ भयानक शब्द करके उड़ता है। उड़ने के साथही उसके आघात से ऊपर का जहाज़ भी उड़कर टुकड़े टुकड़े हो जाता है।

इस प्रकार के सुरङ्ग समुद्र के भीतर ऐसी जगह लगाये जाते हैं ज़हां से जहाज़ों के आने जाने का मार्ग होता है। अगर पानी अधिक गहरा नहीं होता तो ये सुरङ्ग के सन्दूक़ समुद्र के तल में रख दिये जाते हैं। इन सन्दूक़ों के नीचे लोहे के कांटे रहते हैं वे तल की मिट्टी के भीतर घुस जाते हैं। इस लिए सन्दूक़ जहां का तहां जकड़ा रहता है। यदि पानी गहरा होता है तो वे किसी चीज़ से लटका दिये जाते हैं और ज़ंजीरों के द्वारा समुद्र की मिट्टी से जकड़ दिये जाते हैं। यदि पानी बहुत ही गहरा होता है तो ये सन्दूक़ योंही पानी के भीतर डाल दिये जाते हैं।

सुरङ्ग दो तरह से उड़ाया जाता है। एक छू कर, दूसरा देख कर। देख कर उड़ाने वाली तरकीब में सुरङ्ग के सन्दूक़ से एक तार रहता है। उसका एक छोर समुद्र के किनारे एक विशेष जगह में जोड़ दिया जाता है। उस जगह एक आदमी रहता है उसके पास कई यन्त्र और बिजुली का संग्रह रहता है। यह आदमी दूरबीन लगाये बैठा रहता है। ज्योंही उसे शत्रु का कोई जहाज़ सुरङ्ग के ऊपर से जाता हुआ देख पड़ता है, त्योंही वह उस तार के द्वारा बिजुली प्रवाहित करके सुरङ्ग को उड़ा देता है। उड़तेही एक भयङ्कर गर्जना होती है और टुकड़े टुकड़े होकर जहाज़ डूब जाता है। कहीं कहीं एक यन्त्र-विशेष में कुछ कांच लगे रहते हैं। उनके संयोग से एक परदे पर बन्दर-गाह की छाया पड़ी हुई दिखाई दिया करती है। उस परदे पर नियमित स्थान में जहाज़ आया हुआ ज्योंही देख पड़ता है, त्योंही बिजली की प्रेरणा से सुरङ्ग उड़ा दिया जाता है। एक और भी युक्ति है उसके अनुसार ज्योंही जहाज़ सुरङ्ग को स्पर्श करता है, त्योंही उस सुरङ्ग से तार के द्वारा बिजुली का प्रवाह किनारे पर बैठे हुए मनुष्य को उसके आने की सूचना देता है। तब वह आदमी उस प्रवाह के वेग को इतना अधिक कर देता है कि सुरङ्ग तत्काल उड़ जाता है।

इन सुरङ्गों से बचने की भी व्यवस्था की गई है। जहां सुरङ्ग का भय होता है वहां छोटी छोटी एक विशेष प्रकार की डोंगियां भेजी जाती हैं। वे पानी के भीतर यथानियम सुरङ्गों को उड़ा देती हैं। ऐसा करने में स्वयं उनको कुछ हानि नहीं होती। इस प्रकार की डोंगियों को उनके काम में विघ्न डालने और उनको हानि पहुंचाने या डुबाने के लिये किनारे पर तोपें लगी रहती हैं। डोंगियों को देखतेही ये तोपें उन पर गोला बरसाने लगती हैं। शत्रुओं के जहाज़ों को छोड़कर दूसरे जहाज़ों को सुरङ्ग से बचा कर रास्ता बतलाने के लिये भी डोंगियां रखनी पड़ती हैं। एक निर्भ्रान्त नक़शा भी रखना पड़ता है। उससे मालूम रहता है कि कहां कहां पर सुरङ्ग हैं। इसमें कोई ग़लती हो जाने से अनर्थ होने का डर रहता है। वर्तमान युद्ध में रूस का एक बहुत बड़ा जहाज़ अपनेही सुरङ्ग से टकरा कर डूब गया!

दूसरे प्रकार के सुरङ्ग केवल स्पर्श से उड़ते हैं। सुरङ्ग के सन्दूक़ पर कांटे से होते हैं। उन कांटों पर जहाज़ की रगड़ लगतेही सन्दूक़ फट जाता है और भयङ्कर आवाज़ के साथ उसके भीतर भरे हुये पदार्थ उड़ते हैं। इस तरह जहाज़ का पल भर में नाश हो जाता है। इसी प्रकार के सुरङ्ग से रूस और जापान के कई जहाज़ इस लड़ाई में टुकड़े टुकड़े होकर डूब गये। ये सुरङ्ग बहुत ही भयङ्कर होते हैं। उनको किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं रहता। वे एक जगह से दूसरी जगह यथेच्छ बहते हुये चले जाते हैं और यदि कोई जहाज़ उनसे टकरा जाता है, फिर चाहे वह अपना हो या पराया, तो उसे वे फौरन ही उड़ा देते हैं।

अभी तक सामुद्रिक लड़ाई में टारपोडो नामक डोंगियां अत्यन्त घातक समझी जाती थीं; परन्तु अब यह प्रमाणित हो गया है कि ये सुरङ्ग उनकी भी अपेक्षा अधिक घातक हैं। जब इस लड़ाई का प्रारम्भ हुआ तब जापानियों ने रूस के जहाज़ों पर टारपीडो छोड़ा, परन्तु उनका छोड़ना निष्फल हुआ। उनसे एक भी रूसी जहाज़ नहीं डूबा। परन्तु सुरङ्गों में पड़कर रूस के दो बड़े बड़े जहाज़ बात की बात में चूर होकर समुद्र के भीतर चले गये! लड़ाई के जहाज़ बहुत मज़बूत होते हैं। उनके ऊपर मोटी मोटी लोहे की कई चद्दरें मढ़ी रहती हैं। यदि बाहरी चद्दर टूट जाती है तो भीतर वाली पानी को अन्दर आने से रोकती है। फिर, जहाज़ के जितने खण्ड होते हैं सब ऐसेही चद्दरों से परस्पर अलग किये रहते हैं, जिसमें अगर एक खण्ड, या एक कमरे, में पानी आ जाय तो दूसरा उससे बचा रहै। परन्तु सुरङ्गों का आघात लगने से ये सब युक्तियां व्यर्थ हो जाती हैं। उनका महा भयङ्कर स्फोट होतेही जहाज़ के नीचे छोटे बड़े अनेक छेद हो जाते हैं। स्फोट के धक्कों से जहाज़ का बायलर और गोला बारूद आदि से भरा हुआ घर भी यकदम उड़ जाता है। अतएव सुरङ्ग के और स्वयं जहाज़ के धक्कों से उसका नाश हुए बिना नहीं रहता।

बन्दरों की रक्षा के लिए एक और उपाय की योजना की गई है। वह योजना पानी के भीतर चलनेवाली एक प्रकार की डोंगी है। उसका आकार कुछ कुछ विलायती सिगरेट का ऐसा होता है। वह बीच में मोटी होती है और इधर उधर पतली। वह सब तरफ से बन्द रहती है। बीच में एक छोटा सा बुर्ज होता है। उसी में चारों तरफ देखने की व्यवस्था रहती है। जब यह डोंगी पानी के ऊपर चलती है तब तो इस बुर्ज का उपयोग होता है; परन्तु जब यह पानी के भीतर चली जाती है तब उसका कोई उपयोग नहीं होता। उस समय पेरिस्कोप नामक यन्त्र से काम लिया जाता है। यह यन्त्र काँच का होता है। और कोई १५ फुट ऊंची एक नली के सिरे पर लगाकर डोंगी के ऊपर रख दिया जाता है। इस यन्त्र में आस पास की किरणें प्रवेश कर जाती हैं और उसमें लगी हुई नली के रास्ते से भीतर पहुंचती है। उनके द्वारा भीतर के मनुष्य १५ फुट की गहराई तक बाहर का सब दृश्य अच्छी तरह देख सकते हैं। इन डोंगियों का यह काम है कि शत्रु के जहाज़ को देखते ही ये पानी के भीतर गोता लगावें। वहां वे धीरे धीरे जहाज़ के नीचे जाकर सुरङ्ग या टारपीडो लगाकर तत्क्षण भग जावें। यह सब अभी तक कथन मात्र है; लड़ाई में ये डोंगियां अपना काम कितनी शीघ्रता से कर सकेंगी इसका अभी तक निश्चय नहीं हुआ। क्योंकि अभी तक इन डोंगियों का उपयोग हो नहीं हुआ। अभी, कुछ दिन हुए, इङ्गलैण्ड के किनारे एक ऐसी डोंगी, एक व्यापारी जहाज़ के धक्के से, डूब गई। इससे जान पड़ता है कि इसका चलाना बहुत कठिन है।

यह जिस तरह डूबी होगी उसका एक काल्पनिक चित्र यहां पर दिया जाता है। जब यह डोंगी डूबी तब किसी ने नहीं जाना। कई दिन बाद, उस जगह, समुद्र के ऊपर बुलबुले उठते हुए दिखलाई दिये। तब तलाश करने पर उसका पता लगा। उसमें जितने आदमी थे सब मर गये थे।

समुद्र के भीतर इस डोंगी के चलाने की कई तरकीबें हैं। एक तरकीब ऐसी है जिससे समुद्र का पानी डोंगी के भीतर आ जाता है। पानी भीतर जाने से डोंगी कुछ भारी हो जाती है; इस लिए सहजही में वह समुद्र के अन्दर चली जाती है। वह पानी जब निकाल डाला जाता है तब डोंगी हलकी हो जाती है और समुद्र के ऊपर आ जाती है। दूसरी तरकीब में एक प्रकार के "स्क्रू" (पंखे) से काम लिया जाता है। यह पंखा इस डोंगी के ऊपर या नीचे लगा रहता है। उसको फिराने से इच्छानुसार डोंगी डूब जाती है और ऊपर भी आ जाती है। यह डोंगी पानी के ऊपर

भी चलती है और भीतर भी। ऊपर इसकी गति एक घण्टेमें १५-२० मील होती है; और भीतर ८-९ मील। इसकी लम्बाई ५० से लेकर १५० फुट तक होती है। इसमें १५-२० आदमी रह सकते हैं। उनके श्वासोच्छ्वास के लिए डोंगी में घनीभूत वायु भरी रहती है। बुरी वायु को बाहर निकालने का भी प्रबन्ध उसमें रहता है।—बालबोध।

ईश्वर।

—नास्तिकास्तिक-सम्वाद—

[१]

नास्तिक—आप कहते हैं कि यह सृष्टि ईश्वर की बनाई हुई है। इससे तो यह तात्पर्य्य निकला कि, किसी समय, अर्थात् सृष्टिरचना के पहले, सिवा ईश्वर के और कुछ था ही नहीं।

आस्तिक—इससे इस प्रकार का तात्पर्य्य, अर्थ या मतलब हरगिज़ नहीं निकला। अविनाशी ईश्वर अपने कर्म्म को भी अविनाशी कर सकता है। इसलिए, उसका सर्जन, अर्थात् सृष्टिरचना करने का कर्म्म, भी उसके अस्तित्व के साथ ही अविनाशी हो सकता है। सृष्टि ईश्वर के शाश्वत कर्म्म के साथ है; इसलिए वह भी शाश्वत है। जो आप इस बात को न मानेंगे तो आपको यह मानना पड़ेगा कि कोई समय ऐसा भी आयेगा जब सर्व-शक्तिमान् ईश्वर निष्कर्म्म हो जायगा। परन्तु इस प्रकार की तर्कना करना पागलपन है। अच्छा, मान लीजिए, कि सृष्टि अनादि नहीं है; तो भी तो आपकी बात सिद्ध नहीं होती। क्योंकि समय की उत्पत्ति सृष्टि ही के साथ हुई है-समय से ही सृष्टि का अस्तित्व-काल नापा जाता है, जिससे यह प्रमाणित हुआ कि सृष्टि के पहले समय न था। अतएव सृष्टि के पहले, समय के अन्तर्गत, ईश्वर भी न था। पर ऐसा कहना या मानना जल्पना मात्र है। ईश्वर है। उसके लिए न वर्तमान काल है, न भूत काल, न भविष्यत् काल। सब काल यकसां हैं। अगर कालसूचक कोई शब्द उसके लिए कहा जा सकता है तो वह शब्द अनादित्व है।

नास्तिक—यदि आपका ईश्वर अनादि है तो सृष्टि के पहले वह कहां था और क्या करता था? क्या वह आदि-अन्त-रहित किसी निःसीम खोखले में था? क्योंकि आकाश भी तो तब उत्पन्न न हुआ था। और, उस समय, क्या वह बिलकुल बेकार था?

आस्तिक—(क) अगर ईश्वर वहां था जहां रहने की आप सम्भावना करते हैं तो उस जगह का नाम खोखला नहीं हो सकता। खोखली या पोली वह चीज़ कहलाती है जिसके भीतर कुछ न हो। इस बात को याद रखिए। (ख) ईश्वर कर्म्ममय है। संसार में जितनी आत्मायें हैं, और जितनी कर्म्मशीलता है, उस सबका वह आदि कारण है। उसीसे वे निकली हैं। इसलिए ईश्वर को बेकार या कर्म्महीन—आलसी—बतलाना, उसकी हो नहीं, मनुष्यों की भी प्रकृति से अनभिज्ञता ज़ाहिर करना है।

नास्तिक—बुद्धिमान के चित्त में दो तर्कनायें उठ सकती हैं—(१) या तो यह, कि सृष्टि स्वयंभूत है अर्थात् आप ही आप उत्पन्न हुई है; (२) या, अगर, उसे किसीने रचा है तो वह रचनेवाला स्वयंभूत है। इनमें से दूसरी बात मुशकिल से साबित की जा सकती है।

आस्तिक—अफ़सोस इस बात का है कि आप जो कुछ कहते हैं बहुत थोड़ा कहते हैं। आपको चाहिए था कि आप यह साफ़ तौर पर कह देते कि आपकी दूसरी तर्कना में कैसी मुशकिल दरपेश है। दोनों को साबित करने में कौन कौन से सुबूत आप दे सकते हैं। स्वयंभू और अनादि स्रष्टा (ईश्वर) मान लेने में तो आपको ज़ियादह मुशकिल मालूम होती है; परन्तु अनादि सृष्टि मानने में कम! आश्चर्य की बात है! अनादि

स्रष्टा मान लेने में किसी तरह का व्यतिक्रम नहीं आता; उसे बुद्धि क़बूल करती है। परन्तु सृष्टि को अनादि मानने से यह भी मानना पड़ेगा, कि एक ही वस्तु में, एक ही साथ, परस्पर-संघातक या संहारक गुण भी रहते हैं। इस बात को अक्ल क़बूल नहीं करती। तर्कशास्त्र के नियमों के यह सर्वथा विरुद्ध है।

दर्शन-शास्त्र के आचार्यों का मत है कि सृष्टि न तो अनादि है और न उसे किसीने बनाया ही है। ईश्वर की इच्छा मात्र से वह उत्पन्न हो गई है। वह अपना खुद का कोई अस्तित्व नहीं रखती, ईश्वर ही के अस्तित्व का वह एक प्रकार का दृश्यमान दृश्य है। इन शास्त्रकारों को आप तुच्छ समझते हैं; परन्तु आप से तो ये ज़रूर ही ज़ियादह समझदार थे; क्योंकि, इन्होंने ईश्वर को सत्य और जगत् को मिथ्या माना है। जगत् की अपेक्षा ब्रह्म को अधिक बुद्धिग्राह्य मानने में इन दार्शनिकों ने आप से, और आपके साथी दूसरे नास्तिकों से, विशेष विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता दिखाई है। कान्त नामक दर्शनशास्त्री का मत है कि दो में से किसीका अस्तित्व ठीक तौर पर प्रमाणित नहीं हो सकता; जिसका अर्थ यह निकला कि न जगत् ही अविनाशी है न ईश्वर ही। होजिल और शीलिंग इत्यादि जरमनी के तत्ववेत्ताओं का सिद्धान्त है कि 'अहं' के सिवा और सब अनस्थिर है; 'अहं' से ही सब पदार्थ पैदा हुए हैं। फ़्रांस के तत्ववेत्ता कहते हैं कि जगत् किसीका निर्म्माण किया हुआ नहीं है; वह ईश्वर के साकार रूप का विकाश मात्र है। अब ज़रा सोचिए तो सही कि इनमें से कोई भी आपकी ऐसी तर्कना करता है? कोई नहीं। आपका दो में से एक भी सिद्धान्त, या एक भी तर्कना, इनके सिद्धान्तों के अन्तर्गत नहीं। आपने, अभी कलसे, इन बातों पर विचार करना शुरू किया है। पर इन विद्वानों ने, मुद्दत हुई, चिरकाल तक इन विषयों का मनन किया है। अनेक ग्रन्थ लिख कर इन्होंने अपनी गहन गवेषणा का फल भी प्रकाशित किया है; पर आप चार ही सतर लिखकर इतनी पण्डिताई दिखाते हैं! ईश्वर के अस्तित्व को मानने और जगत् के अस्तित्व को न मानने में अधिक पण्डिताई है। पर जगत् के अस्तित्व को मानने और ईश्वर के अस्तित्व को न मानने में बहुत कम। आपकी पण्डिताई दूसरे क़िस्म की है।

नास्तिक—सच तो यह है कि ऐसे विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात पूरे तौर पर ठीक ठीक नहीं जानी जा सकती।

आस्तिक—ईश्वर और जगत् से किसी चीज़ के जितने और जिस प्रकार के सम्बन्ध हैं, चाहे वे सम्बन्ध आकस्मिक हों चाहे स्वाभाविक, उन सब को जान लेना उस चीज़ को पूरे तौर पर जान लेना है। जिसके ज्ञान की सीमा नहीं है; जिसमें ज्ञान का निरतिशय बीज है; जो सर्वज्ञ है—वही "ऐसे विषयों" को या और दूसरे विषयों को पूरे तौर पर जान सकता है। हम लोग उनको पूरे तौर पर हरगिज़ नहीं जान सकते; क्योंकि हममें ज्ञान की मात्रा बहुत कम है; हमारा ज्ञान सीमाबद्ध है, निःसीम नहीं। परन्तु जिस चीज़ के विषय में जितना हम जानते हैं उतने को ठीक ठीक जानने में हमारा यह सीमाबद्ध ज्ञान किसी प्रकार प्रतिबन्धक नहीं हो सकता। अपनी अल्पज्ञता के कारण हम यह तत्काल नहीं जान सकते कि किसने, किस जगह, किस दिन, किस प्रकार हमारी जेब घड़ी को बनाया; परन्तु यह हम ठीक ठीक अवश्य जान सकते हैं कि यह घड़ी है और यह वक्त बतलाती है। ईश्वर का पूरा पूरा ज्ञान हमको नहीं; परन्तु इस बात का ज्ञान हमें ज़रूर है कि वह है; उसके अस्तित्व में हमको कोई शङ्का नहीं।

नास्तिक—जिसका पार नहीं, जिसकी सीमा नहीं, उसकी बाबत जो कुछ हम जानते हैं उसकी सीमा निहायत ही थोड़ी हो सकती है। परन्तु जितना हम जानते हैं—चाहे वह बिलकुल ही कम क्यों न हो—सबको एक सा हक़ है कि वह, उसके विषय में, सच्चे दिल से, अपने ख़याल ज़ाहिर करे।

आस्तिक—ख़ूब कहा ! बजा फ़रमाया ! अब यह भी फ़रमाइए कि क्या किसी मनुष्य को यह भी मजाज़ है कि वह उस चीज़ की बाबत भी लम्बी चौड़ी तक़रीर करे जिसका ज्ञान उसे बिलकुल ही कम है ? सच्चे दिल से अपने ख़याल ज़ाहिर करने के लिए सबको बराबर अख़तियार है। परन्तु हर आदमी को, हर वक्त, हर चीज़ की बाबत सच्चे दिल से भी अपने ख़याल ज़ाहिर करने का अख़तियार नहीं; क्योंकि अगर और कुछ नहीं, तो लोकलज्जा का ज़रूर डर है। आदमी का दिल चाहे जितना सच्चा हो, न वह उसके ख़याल की सचाई को साबित करता है और न उस सचाई की विशेषता ही को बढ़ाता है। अगर ऐसा होता तो बरेली के पागलख़ाने के पागल सब से बड़े तर्कशास्त्री और सत्यवक्ता होते; क्योंकि अपने ख़यालात ज़ाहिर करने में उनसे बढ़कर और किसी का दिल सच्चा नहीं है ! ख़याल की योग्यता, उसकी सत्यता अर्थात् उसके याथार्थ्य पर अवलम्बित रहती है; ख़याल करनेवाले के दिल की सचाई पर नहीं। आया आपकी समझ में ? जब किसी आदमी पर कोई इलज़ाम लगाया जाता है तब वह अकसर यह बहाना बतलाकर अपने को उससे बरी करना चाहता है कि इस काम को मैंने सच्चे दिल से किया; इसमें कोई बुराई मैंने नहीं समझी। अब आपही कहिए कि अगर इस तरह ख़याल करनेवाले की बात उसके दिल के सच्चे होने का सुबूत मान ली जाय तो गवर्नमेण्ट की जेल की हज़ारों इमारतें ख़ाली करना पड़ें या नहीं ?

सच्चे दिल से किसी बात को कहने के हक़ से एक और हक़ तअल्लुक़ रखता है। उस हक़ के मुताबिक़ हर आदमी को लाज़िम है कि वह देखे कि कहने के मुवाफ़िक़ वह बरताव भी करता है या नहीं। किसी बात को कहने के हक़ के साथ कहनेवाला अगर इस हक़ का ख़याल नहीं करता तो हम उसकी बहस को प्रलापमात्र समझते हैं। हमको आशा है कि आप ऐसी जल्पनामूलक बहस का हक़ दिये जाने का दावा नहीं करते। तो यह लाज़िम हुआ कि जो ख़यालात आप ज़ाहिर करें ठीक उन्हीं के मुताबिक़ आप अपना बरताव भी रक्खें। अब आप कृपा करके "सच्चे दिलसे" सोच जाइए कि आपका कर्म्म आपके ख़यालात के अनुकूल होता है या प्रतिकूल।

बस; आज इतना ही रहने दीजिए।

इति प्रथमाध्याय।

इँगलैण्ड की व्यापारनीति।

[पूर्व-प्रकाशित से आगे]

सन् १८१३ ई० में कम्पनी के काम काजों की तहक़ीक़ात करने के लिए एक कमीशन नियत किया गया था। उस समय हेस्टिंग्स, टामस मनरो, जान मालकम आदि बड़े बड़े अधिकारियों की सलाह ली गई थी। सलाह इस बात की नहीं थी, कि भारतवर्ष का व्यापार किस तरह बढ़ेगा, वा भारतवर्ष की कारीगरी की तरक्की किस उपाय से होगी; परन्तु सलाह इस बात की लीगई थी कि इङ्गलैण्ड के कारख़ानों की उन्नति किस उपाय से होगी। यह बात निम्न वाक्यों से स्पष्ट विदित होती है—"They were asked by the House of Commons, not how the manufactures of India could be fostered, but how they could be *discouraged* to make room for British manufacture". इतना उद्योग करने पर भी उस समय भारतवर्ष के सूती और रेशमी कपड़े पर इङ्गलैण्ड में ५०–६० सैकड़ा मुनाफ़ा मिलता था। अर्थात्, जब इङ्गलैण्ड में बुने हुए सूती और रेशमी कपड़े इङ्गलैण्ड में १०० को मिलते थे, तब हिन्दुस्तान में बुने हुए कपड़े इङ्गलैण्ड में सिर्फ़ ५० या ६० को मिलते थे। हिन्दुस्तान की यह कारीगरी, हिन्दुस्तान की यह कुशलता, हिन्दुस्तान की यह व्यापारशक्ति औरों को अच्छी न लगी।

सन् १८१५ ई० में मिस्टर जोसेफ़ रैकिङ्ग नामक साहब ने हिन्दुस्तान के माल पर कर लगाने के लिए जो प्रस्ताव पार्लिमेण्ट में किया था उसीके आधार पर हम नीचे लिखी हुई बातें प्रकाशित करते हैं—

(१) कालिकत से आनेवाले कपड़े पर सैकड़ा ६८ पौंड ६ शिलिङ्ग ८ पेन्स कर लगाया जाय।

(२) ढाका की मलमल पर सैकड़ा २७ पौंड ६ शिलिङ्ग ८ पेन्स कर लगाया जाय।

(३) रङ्गीन कपड़ा हिन्दुस्तान से आना बिलकुल रोक दिया जाय। जो लोग इङ्गलैण्ड में उस कपड़े को लें उन्हें दण्ड मिलै।

जब उन लोगों ने देखा कि इतना कड़ा कर लगाने पर भी हिन्दुस्तान का माल वहां बिक्री के लिए आता ही है, तब उन्होंने सैकड़ा २० पौंड कर और बढ़ा दिया। अब १०० पौंड क़ीमत की छींट पर ७९ पौंड ६ शि० ८ पे० और मलमल पर ४७ पौंड ६ शि० ८ पे० कर हो गया। इस तरह भारत का व्यापार सर्वथा डूब गया।

इङ्गलैण्ड का व्यापार दृढ़ होते ही सन् १८६०–७६ में अप्रतिबद्ध व्यापार-नीति का डङ्का इस देश में बजाया गया। तबसे अब तक पृथ्वी के सब देशों के व्यापारियों ने भारत को कैसे ग़ारत किया है, यह हम ऊपर लिख आये हैं। यही इस देश की व्यापारनीति का संक्षिप्त इतिहास है।

इङ्गलैण्ड की उक्त नीति के सम्बन्ध में रूस की गवर्नमेण्ट के प्रसिद्ध कोषाध्यक्ष एम्० डी० विट ने कहा है कि "पहले पहल इङ्गलैण्ड ने, संरक्षित व्यापारनीति का पूर्ण रीति से स्वीकार कर, अपने व्यापार और कला-कुशलता की रक्षा की; और जब उसको व्यापार तथा कलाकुशलता में किसी दूसरे देश की स्पर्धा का भय न रहा, तब उसने तुरन्त ही अप्रतिबद्ध-व्यापार-नीति का स्वीकार कर लिया। उसके विद्वान् लेखकों ने दुनियां के सब लोगों को यह उपदेश देना आरम्भ किया कि, अप्रतिबद्ध-व्यापार-नीति, शास्त्र के ऐसे तत्वों के आधार पर रची गई है, जो सदा एक से और सर्वमान्य हैं। अतएव उस नीति का स्वीकार सब देशों को करना उचित है।"

क्या हम प्रश्न कर सकते हैं कि जिस प्रकार इङ्गलैण्ड ने अपनी व्यापार-शक्ति को दृढ़ करने के लिए पहले संरक्षण-नीति का स्वीकार किया; और जब वह देश पूर्ण रीति से समृद्ध होगया, तब उसने अप्रतिबद्ध-व्यापार-नीति का अङ्गीकार किया,* उसी प्रकार भारतवर्ष में भी पहले संरक्षण नीति का स्वीकार क्यों नहीं किया गया? क्या जिस संरक्षण नीति के स्वीकार करने से इङ्गलैण्ड को दुनियां के व्यापार में निर्भय स्थान प्राप्त हो गया, उससे भारतवर्ष का कुछ कल्याण न होता?

(ख) भारतवर्ष के व्यापार की वर्तमान दशा।

यह बात ताे प्रगट ही है कि स्वयं चेम्बरलेन साहब ने अब तक इस बात का निश्चय नहीं किया है कि, तरफ़दारी के कर की प्रणाली भारतवर्ष में भी जारी की जायगी या नहीं। उन्होंने भारतवासियों की इस विषय पर सम्मति ली है। अतएव हमको इस बात का विचार करना चाहिए कि तरफ़दारी के कर से भारतवर्ष का क्या हित होगा? इस बात के जानने के लिए हमें इस देश के व्यापार की वर्तमान दशा पर ध्यान देना आवश्यक है।

'भारतवर्ष के व्यापार' से देश के (अन्तर्गत व्यापार) भीतरी व्यापार–Internal Trade—का अर्थ नहीं समझना चाहिये। इस देश के एक भाग से दूसरे भाग में, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में, एक शहर या गांव से दूसरे शहर या गांव में, जो व्यापार होता है उसको भीतरी व्यापार (अन्तर्गत व्यापार) कहते हैं। आज हम उसके सम्बन्ध में कुछ लिखना नहीं चाहते। भारतवर्ष का जो व्यापार दूसरे देशों—जैसे, इङ्गलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि-से होता है उसीके सम्बन्ध में हम को विचार

* इस समय चेम्बरलेन साहब इङ्गलैण्ड में फिर संरक्षण-नीति का स्वीकार कराना चाहते हैं।

करना है। इसको अङ्गरेज़ी में Import Export Trade (आमदनी-रफ़्तनी अथवा आयात-निर्यात व्यापार) कहते हैं।

भारतवर्ष को, एक वर्ष में, इङ्गलैण्ड तथा उसकी आधीनता में रहनेवाले देशों और उपनिवेशों से ६० करोड़ ३२ लाख ४० हज़ार का माल आया, और भारतवर्ष से ५७ करोड़ ७० हज़ार का माल उन देशों को भेजा गया। अर्थात् भारतवर्ष के भेजे हुए माल से आया हुआ माल ३ करोड़ ३१ लाख ७० हज़ार का अधिक है। अथवा साधारण भाषा में यह कहिये कि भारतवर्ष ने एक वर्ष में इङ्गलैण्ड तथा उसके उपनिवेशों से ६० करोड़ ३२ लाख ४० हज़ार का माल ख़रीदा और उन देशों को ५७ करोड़ ७० हज़ार का माल बेचा।

जो देश किसी प्रकार इङ्गलैण्ड के आधीन नहीं हैं, वहां से एक वर्ष में २२ करोड़ ६ लाख का माल आया, और ६६ करोड़ ५२ लाख का माल भारतवर्ष से उन देशों को भेजा गया। अर्थात् आये हुए माल से गया हुआ माल ४४ करोड़ ४६ लाख का अधिक है। अथवा यों कहना चाहिए कि जो देश इङ्गलैण्ड के आधीन नहीं हैं, उनसे भारतवर्ष ने एक वर्ष में २२ करोड़ ६ लाख का माल ख़रीदा, और वहां ६६ करोड़ ५२ लाख का माल बेचा।

भारतवर्ष के सन् १९०१–१९०२ के आयात-निर्यात व्यापार का सारांश नीचे के अङ्कों से कुछ कुछ मालूम हो सकता है।

	करोड़ लाख हज़ार
(१) इङ्गलैण्ड तथा उसके आधीन रहनेवाले देशों और उपनिवेशों से भारतवर्ष एक वर्ष में जो माल ख़रीदता है उसका मूल्य	६०-३२-४०
(२) दूसरे देशों से (जो किसी प्रकार इङ्गलैण्ड के आधीन नहीं हैं) जो माल भारतवर्ष एक साल में ख़रीदता है उसका मूल्य	२२-६-०
(३) इङ्गलैण्ड तथा उसके आधीन रहनेवाले देशों और उपनिवेशों को जो माल भारतवर्ष एक साल में बेचता है उसका मूल्य	५७-०-७०
(४) दूसरे देशों को जो माल भारतवर्ष एक साल में बेचता है उसका मूल्य	६६-५२-०

अब सोचना चाहिये कि "तरफ़दारी के कर" से भारतवर्ष को क्या लाभ पहुंचेगा? "तरफ़दारी के कर" का परिणाम क्या होगा? यही न कि, जिस माल को भारतवर्ष इङ्गलैण्ड तथा उसके उपनिवेशों से ख़रीदता है, उस पर कर घटा दिया जावे और जिस माल को वह दूसरे देशों से ख़रीदता है उस पर कर बढ़ा दिया जाय। पाठक इस बात को भूले न होंगे कि भारतवर्ष ने इङ्गलैण्ड तथा उसके उपनिवेशों से जो माल एक वर्ष में ख़रीदा उसका मूल्य ६० करोड़ ३२ लाख ४० हज़ार है, और दूसरे देशों से जो माल ख़रीदा उसका मूल्य सिर्फ़ २२ करोड़ ६ लाख है। अर्थात्, "तरफ़दारी के कर" से यह लाभ होगा कि हम को ६० करोड़ ३२ लाख ४० हज़ार के माल पर कर छोड़ देना होगा और सिर्फ़ २२ करोड़ ६ लाख के माल पर कर लेना होगा! यही बात व्यापारी लोगों की भाषा में इस प्रकार कही जा सकती है कि हम अपने ११ आने माल पर कर न लें और सिर्फ़ ५ आने माल पर कर लें!! अब बिक्री की ओर ध्यान दीजिये। भारतवर्ष का माल इङ्गलैण्ड और उसके उपनिवेशों से दूसरे देशों ही में अधिक बेचा जाता है। वे सब देश संरक्षित व्यापारनीति के अनुयायी हैं। जब हम उनके २२ करोड़ ६ लाख के माल पर कर लगावेंगे, तब वे हमारे ६६ करोड़ ५२ लाख के माल पर कर का बोझा लाद देंगे या नहीं। इससे हमारा वह माल वहां बिक नहीं सकेगा। तब वह माल सस्ते भाव में इङ्गलैण्ड ही को बेच देना पड़ेगा।

तात्पर्य्य यह है कि, किसी दृष्टि से देखिये, 'तरफ़दारी के कर' से भारतवर्ष का कुछ कल्याण नहीं होगा। तरफ़दारी का कर केवल इङ्गलैण्ड ही के हित के लिए है। उससे भारतवर्ष के हित की रत्ती भर आशा नहीं की जा सकती। भारतवर्ष का यथार्थ हित तभी होगा जब इङ्गलैण्ड के राज-नीति-निपुण लोग स्वार्थ-बुद्धि को छोड़ हमारे व्यापार की नीति को कुछ स्वतंत्र होने देंगे। जब तक वे लोग केवल अपने ही देश के हित

साधन की ओर लगे रहेंगे और भारतवर्ष के हित की कुछ परवा नहीं करेंगे तब तक इङ्गलैण्ड की किसी व्यापारनीति से हमारा कल्याण न होगा।

अन्त में हम यह आशा करते हुए इस लेख को समाप्त करते हैं कि हमारे भारतवासी भाई इस विषय पर ध्यान देंगे और सोचेंगे कि हमारे देश के व्यापार की दशा किन उपायों से सुधर सकती है। यदि इस लेख से हमारे देश भाइयों को भारतवर्ष की आर्थिक दशा पर चर्चा करने के लिए कुछ थोड़ी सी भी सहायता मिल जाय तो हम इस विषय पर अधिक लिखने का साहस करें।

माधवराव सप्रे।

पुस्तक परीक्षा।

पञ्चाङ्ग और जन्त्री। पण्डित चम्मनलाल, ज्योतिषी, ने देहली से सं० १९६१ के तीन प्रकार के पञ्चाङ्ग और दो प्रकार की जन्त्रियां भेजी हैं। एक पञ्चाङ्ग के ऊपर दश महाविद्याओं के चित्र हैं। एक पञ्चाङ्ग बहुत मोटे देशी काग़ज़ पर, पुराने ढङ्ग से छपा है। तीसरे में कोई विशेषता नहीं। दो जन्त्रियों में से एक बहुत बड़ी है। उसमें देहली दरबार का हाल है। दरबार-सम्बन्धी कई एक लेखों के चित्र हैं। दरबार में शरीक होनेवाले राजा, महाराजा, और नवाबों के भी अनेक चित्र हैं। यह जन्त्री संग्रहणीय है। दोनों जन्त्रियां उर्दू में हैं।

❋

स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यान। सरस्वती के पिछले अङ्कों में महात्मा रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द का चरित प्रकाशित हो चुका है। उनसे, इन महात्माओं के माहात्म्य का अनुमान सरस्वती के वाचकों को हो गया होगा। उक्त परमहंसजी का स्मारक एक आश्रम कुछ वर्षों से काशी में खुला है। उसका नाम है "रामकृष्ण-अद्वैत-आश्रम"। इस आश्रम ने एक बड़ा अच्छा काम आरम्भ किया है। इसके प्रयत्न से स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होता है। इस अनुवाद-मालिका का पहला अङ्क, आज, हमको प्राप्त हुआ है। इसमें, और छोटी छोटी वक्तृताओं के सिवा, स्वामीजी के उस व्याख्यान का भाषान्तर है, जो उन्होंने अमेरिका के शिकागो नगर की धर्म्म-परिषद् में दिया था। इस व्याख्यान की बड़ी प्रशंसा हुई थी; इसकी बड़ी धूम मच गई थी। इसी एक व्याख्यान से स्वामीजी का नाम दिगन्त-व्यापी हो उठा था। और, व्याख्यान है भी ऐसा ही। आश्रम ने यह बहुत ही स्तुत्य काम आरम्भ किया है। आश्रम को चाहिए कि स्वामीजी के ज्ञान-योग, भक्ति-योग और कर्म्म-योग आदि का भी, क्रम क्रम से, वह अनुवाद प्रकाशित करे। इस अनुवाद-माला की इस पहली पुस्तक में ५५ पृष्ठ हैं। इसका मूल्य कुल ╱) है। इसे लेकर, और व्याख्यानों का अनुवाद करने के लिए, आश्रम को उत्साहित करना उचित है। यह पुस्तक गणेशदास कम्पनी, और भारतजीवन प्रेस, काशी, से मिलती है।

यह आश्रम आज तीन वर्ष से एक और पुण्य-कार्य्य कर रहा है। काशी में धनहीन, जनहीन, रोगी और मुमूर्षु अनाथों को यह यथाशक्ति सहायता देता है। इस प्रकार के जो लोग सड़क पर, गलियों में, घाटों पर अथवा और कहीं म्रियमाण दशा में पड़े मिलते हैं, उनके पथ्यपानी और ओषधि आदि का यह प्रबन्ध करता है। इसके लिए एक मकान है; वहीं ऐसे अनाथ रक्खे जाते हैं। इसकी गत तीन वर्ष की रिपोर्ट पढ़कर हम बहुत प्रसन्न हुए। सर्व-साधारण की सहायता (भिक्षा तक) से यह काम चलता है। दान के लिए इससे अच्छा पात्र नहीं मिल सकता। इसकी यथाशक्ति सहायता करना सबका धर्म्म है।

❋

चित्र। ४४ राजा महाराजों के 'ग्रूप' का एक चित्र बाबू कन्हैयालाल, मास्टर, गोपालमन्दिर, बनारस, ने हमारे पास भेजा है। चित्र का मूल्य एक रुपया है। चित्र अच्छा है; काम का है। भारतवर्ष के

सब नरनाथों को एकही जगह जिसे देखना हो वह इसमें देख सकता है। देहली दरबार के समय यह चित्र बनाया गया था। तब से बराबर बिक रहा है।

❀

सरस्वती पञ्चाङ्ग। यह सम्वत् १९६१ का पञ्चाङ्ग है। पण्डित लक्ष्मीनारायण ने इसे बनाया है और गोस्वामी ब्रजनाथ शर्म्मा ने इसका संशोधन किया है। गोस्वामीजी ही इसे बेचते हैं। आप शीतला गली, आगरा, में रहते हैं। पञ्चाङ्ग लेथो में छपा है। और ~)॥ में मिलता है। साधारण पञ्चाङ्ग देखनेवालों का काम इससे बख़ूबी निकल सकता है।

❀

किङ्ग लियर नाटक। अङ्गरेज़ी कवि शेक्सपियर ने कई नाटक लिखे हैं। उनमें से एक का नाम किङ्ग लियर है। यह उसीका हिन्दी अनुवाद है। जयपुर के डाकृरी महकमे के कर्म्मचारी पण्डित बदरीनारायण, बी० ए०, ने यह अनुवाद किया है। पण्डित गोपीनाथ, यम० ए०, भी जयपुर के रहनेवाले हैं। उन्होंने भी शेक्सपियर के दो नाटकों का अनुवाद किया है। जयपुर के यम० ए०, बी० ए०, विद्वानों का हिन्दी अनुराग प्रशंसनीय है। किङ्ग लियर बम्बई के वेङ्कटेश्वर प्रेस में छपा है। उसकी जिल्द भी अच्छी है और छपाई भी। अनुवाद की भाषा में कहीं कहीं त्रुटियां रह गई हैं। परन्तु सब बातों का विचार करके हम यही कहते हैं। कि पुस्तक पढ़ने लायक़ है। दाम मालूम नहीं।

❀

कनक-सुन्दर। सरस्वती में पाठकों ने "केसर-विलास" नाटक की समालोचना पढ़ी होगी। कनक-सुन्दर में उसी प्रकार की एक कहानी का पूर्वार्द्ध है। इसके कर्ता बाबू शिवचन्द्र भरतिया जी हैं। आप कई भाषाओं में विज्ञता रखते हैं। कुछ दिनों से आपकी दृष्टि हिन्दी की ओर भी गई है। यह बहुत अच्छी बात है। सुनते हैं, आपके केसर-विलास का मारवारियों में बहुत आदर हुआ है। वह भी मारवारीभाषा में लिखा गया है और यह भी। कनक-सुन्दर में यह विशेषता है कि इसका रूपरङ्ग और आकार-प्रकार बहुत ही रँगीला और मनोमोहक है। इसमें दो हाफ़-टोन चित्र भी हैं। मूल्य इसका केवल ॥) है।

यह पुस्तक भी मारवारीसमाज की बुरी रीतियों में संशोधन कराने के इरादे से लिखी गई है। अल्पवयस्कता में विवाह न करने, विवाह आदि में व्यर्थ रुपया न उठाने, व्यापार में छल कपट न करने इत्यादि का उपदेश इस पुस्तक के पात्रों के चरित-वर्णन के मिस से दिया गया है। इस पुस्तक का विषय एक कल्पित कहानी है। परन्तु इसकी कथा कुछ कम रोचक है। आख्यायिका के अङ्गों का उद्घाटन भट भट होता गया है; इससे पढ़नेवाले के औत्सुक्य की वृद्धि नहीं होती। इसमें जहां जहां बाण, भवभूति, कालिदास, श्रीहर्ष और भारवि इत्यादि कवियों के भावों की छाया ली गई है वहां वहां अच्छी चारुता आ गई है। उन स्थलों को पढ़ने में पढ़नेवाला तन्मनस्क हो जाता है।

❀

वैश्योपकारक। यह एक नया मासिक पत्र है। चैत्र, सम्वत् १९६१ से यह, राम प्रेस, कलकत्ते, से निकलने लगा है। इसका वार्षिक मूल्य बहुत कम, अर्थात् सिर्फ़ १॥), और पृष्ठ संख्या, डिमाई आठ पेजी, २४ है। इसके सम्पादक पूर्वोक्त बाबू शिवचन्द्र बलदेव भरतियाजी हैं। इस पुस्तक का रूप, रङ्ग और आकार बहुत ही लुभावना है। छपाई और काग़ज़ भी प्रशंसनीय है। हाफ़-टोन चित्र भी इसमें रहते हैं। इसके कुछ लेख मारवारी और कुछ हिन्दी भाषा में होते हैं; वे सब अच्छे होते हैं। दाम भी कम है। हमारी यह आन्तरिक इच्छा है कि इसकी उन्नति हो। मारवारियों को चाहिए कि वे विशेष करके इसकी सहायता करें और तद्द्वारा इसके प्रकाशक और सम्पादक का उत्साह बढ़ावें। इसके सम्पादक में कई अलौकिक गुण हैं। आप को ईर्षा-द्वेष और पक्षपात छू तक नहीं गया। आप का हृदय भी बहुत ही सकरुण है। इसीसे, हर महीने, आप जो

समालोचना की आलोचना छापते हैं उसमें, दूसरों की हितैषणा से, उनके गुण-दोष का प्रदर्शन आप बहुत ही मृदु, मधुर और मनोहर शब्दों में करते हैं। आपका सिद्धान्त है कि अपकार करनेवालों पर भी उपकार ही करना चाहिए। इसी सिद्धान्त से प्रणोदित होकर आप कभी किसीको व्यर्थ, अनावश्यक और अप्रासङ्गिक बातें मर्म्मभेदी अथवा अन्य शब्दों में नहीं कहते। आपके लिखने का प्रकार भी कभी कुटिलतागर्भित और सभ्यता की सीमा का उल्लङ्घन करनेवाला नहीं होता। आप जो कुछ लिखते हैं उसका सर्वांश योग्यता, पाण्डित्य, बहुदर्शिता और चातुर्य्य से भरा हुआ होता है। ऐसे सत्यधन और साधु सम्पादक का ईश्वर कल्याण करै!

❊

सरस्वती। यह एक रूपक-नाटक है। इसको प्रकाशित हुए क़रीब ६ वर्ष के हुए। यह काशी के चन्द्रप्रभा प्रेस में छपी है। दाम इसका एक रुपया है; साँचा इसका मँझोला है; और पृष्ठ-संख्या इस की १८४ है। छपाई बहुत अच्छी है; काग़ज़ भी अच्छा है। इसके कर्ता पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र हैं। आपकी गिनती हिन्दी के बहुत प्रसिद्ध लेखकों में है। आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं; उनमें से कई एक विहार के मदरसों में पढ़ाई जाती हैं; एक आध छोटा-नागपुर के विद्या-विभाग में भी प्रचलित है। हिन्दी के कई समाचारपत्रों के आप सम्पादक भी रह चुके हैं। हिन्दी के साहित्य-संसार में आपका बड़ा नाम है। यह हिन्दी के लिए गौरव की बात है कि आप अभी तक लिखते जाते हैं; पुराने लेखकों की तरह चुप नहीं हैं।

बाबू राधाकृष्णदास ने बँगला की "स्वर्णलता" नामक पुस्तक का अनुवाद हिन्दी में किया है। जैसा संविधानक स्वर्णलता में है, वैसा ही सरस्वती में भी बाँधा गया है और फूट के विषमय फलों का बहुत ही अच्छा आदर्श दिखलाया गया है। कर्कशा स्त्री के होने से घर की क्या दशा होती है; स्त्री के कहने पर चलने से मनुष्य को कैसी कैसी आपत्तियों में फँसना पड़ता है; सुशीला स्त्रियां निर्धनता में भी किस प्रकार अपना घर सँभाले रहती हैं—ये बातें इस पुस्तक में अच्छी तरह से दिखलाई गई हैं। परन्तु, रूपककार हमको क्षमा करें, हमें उनका भाषा अच्छी नहीं लगी। उसमें कई प्रकार के दोष हमको मिले। रचना-सम्बन्धी कल्पनाओं में भी हमको कई जगह वैषम्य मिला। कालीप्रसाद कई वर्ष विदेश में रहा। जो रुपये वह अपने पुत्र के नाम भेजता रहा उन्हें उसके भाई दुर्गाप्रसाद का साला लेता गया और मनीआर्डर की रसीद पर कालीप्रसाद के पुत्र के हस्ताक्षर करता गया। उससे कालीप्रसाद को सन्तोष क्यों कर हुआ? उसे अपनी स्त्री और पुत्र के समाचार जानने की क्या कभी उत्कण्ठा नहीं हुई? हुई तो उसके पाने का उसने कुछ उपाय किया? यदि दुर्गाप्रसाद का साला कालीप्रसाद को उसके पुत्रके नाम से पत्र भी भेजता रहा तो इसका उल्लेख क्यों नहीं किया गया? ऐसी ही ऐसी कई त्रुटियां हमको इस नाटक में मिलीं। परन्तु, फिर भी, यह पुस्तक अच्छी और उपादेय है।

❊

मित्र-गोष्ठी-पत्रिका। काशी में मित्रगोष्ठी नाम का एक समाज संस्थापित हुआ है। उसीने यह मासिक-पत्रिका निकाली है। भाषा इसकी संस्कृत है। काशी से ऐसी पत्रिका के निकलने की आवश्यकता थी। इसका पहला अङ्क वैशाख, शक १८२६, में निकला है। उसमें ३२ पृष्ठ हैं। छपाई और काग़ज़ सब उत्तम है। वार्षिक मूल्य १॥) है। मित्रगोष्ठी के कार्य्यालय, मदनपुर, काशी, से यह पत्रिका प्रकाशित होती है। इसके दो सम्पादक हैं। एक साहित्याचार्य्य रामावतार पाण्डेय, यम० ए०, दूसरे भट्टाचार्य्य विधुशेखर शास्त्री। जिस पत्रिका के सम्पादक ऐसे ऐसे विद्वान् हैं, उसमें अवश्य ही अच्छे, उपयोगी और मनोरञ्जक लेख निकलेंगे। यह बात इस अङ्क में प्रकाशित लेखों से भी विदित होती है। इसमें कविता भी है और परिमल नामक प्राचीन संस्कृत कवि के जीवनचरित का भी कुछ

अंश है। शास्त्रीय लेख भी इसमें हैं। ईश्वर करै यह पत्रिका चिरजीविनी हो और अपने लेखों से संस्कृत का दैनन्दिन अधिकाधिक प्रचार करै।

मनोरञ्जक श्लोक।

राजाओं की चिट्ठियां।

महाराष्ट्र राज्य के संस्थापक शिवाजी महाराज के विरुद्ध जब मुगल सम्राट् औरङ्गज़ेब की तरफ़ से लड़ाई के वास्ते शाइस्ता ख़ां आया, तब, ऐसा सुना जाता है, कि उसने यह श्लोक लिख कर शिवाजी के पास भेजा—

वानर! त्वं वने शायी पर्वतस्ते सदाश्रयः।
वज्रपाणिरहं साक्षात् शास्ता स्वयमुपागतः॥

अर्थात् "हे वानर! तुम वन में रहते हो और पर्वत हो तुम्हारा आश्रय है। पर्वतों के पक्षों को काट डालनेवाला साक्षात् वज्रपाणि इन्द्र हो, शासन करनेवाला (शास्ता, शाइस्ता ख़ां) बन कर, मैं तुम पर चढ़ आया हूं।" शिवाजी ने इसका जो उत्तर दिया उसका तात्पर्य यह है कि पर्वत में रहनेवाले, और वन के आश्रित वानर हनुमान ने बालकपन ही में इन्द्र को पराजित किया था, और इन्द्र के दमन करनेवाले रावण को ख़ूब नाच नचाया था। मुसलमानी सेनापति की ओर से संस्कृत श्लोक का लिखा जाना चमत्कारजनक है।

✲

दिल्ली के मुग़ल बादशाहों के अन्तिम काल में आम्बेर (जयपुर) के महाराज सवाई जयसिंह अपने राज्य को बढ़ाते चले जाते थे, और मालवा की सूबेदारी भी करते थे। उस समय पेशवा राज्य के नायक बाजीराव ने, उन्हें, अन्योक्ति में यह श्लोक लिखवा भेजा—

पीत्वा गर्जन्त्यपस्ते दिशि दिशि जलदा
स्त्वं शरण्यो गिरीणां
सुत्रामत्रासभाजां, त्रिदशविटपिनां
जन्मभूमिस्त्वमेव।
ऐश्वर्यं तच्च तादृक् त्वयि सलिलनिधे!
किन्तु विज्ञाप्यमेतत्
सर्वोपायेन मैत्रावरुणिमुनिकृपा-
दृष्टयः प्रार्थनीयाः।

"हे समुद्र! मेघ तुम्हारा ही जल पीकर सब कहीं गरजते हैं, इन्द्र से डरे हुए पर्वतों के शरण भी तुम्हीं हो, कल्पवृक्षों का जन्म भी तुम्ही से है और ऐश्वर्य भी तुम्हारा वर्णन से बाहर है। परन्तु विज्ञापना इतनी ही है कि सभी उपायों से अगस्त्य मुनि (समुद्र को पी जानेवाले) की कृपादृष्टि की प्रार्थना करते रहना"।

इसका उत्तर यह गया—

क्षन्तव्यो द्विजजातितः परिभवो-
ऽप्येतद्वचः पालनात्
पीतः कुम्भसमुद्भवेन मुनिना
किं जातमेतावता?
मर्य्यादां यदि लङ्घयेद्विधिवशात्
तस्मिन् क्षणे वारिधि-
स्त्रैलोक्यं सचराचरं ग्रसति वै,
कस्तत्र कुम्भोद्भवः।

"समुद्र के द्वारा इस वचन के पालन किये जाने के कारण, कि ब्राह्मण से हार जाने पर भी उसे क्षमा ही करना पड़ता है, यदि घड़े से पैदा होनेवाले मुनि ने उसे पी लिया तो क्या हुआ? यदि समुद्र (प्रलयकाल की तरह) अपनी मर्य्यादा को उलाँघ जाय तो वह सारे संसार का ग्रास कर सकता है, बेचारे कुल्हिया से जन्मे हुए मुनि की क्या कथा?"

यह रूखा उत्तर देकर भी उक्त महाराज ने, सुनते हैं, मालवा की सूबेदारी का पट्टा बादशाह से पेशवा के नाम लिखवा, सिप्रा में स्नान करके "ब्राह्मण" पेशवा को मालवा का दान कर दिया।

चन्द्रधर शर्मा।

स्वर्गीय राय दीनबन्धु मित्र बहादुर ।

सरस्वती
सचित्र मासिक पत्रिका।
१९०४
भाग ५] सितम्बर, १९०४ [संख्या ९

राय बहादुर दीनबन्धु मित्र।

सरस्वती में विद्वानों और उद्यमशीलों का जीवनचरित प्रकाशित होते देख आज मुझे भी वङ्गभाषा के एक सुलेखक का जीवनचरित उस भाषा से उलथा कर सरस्वती के पाठकों के आगे उपनीत करने का उत्साह हुआ। जीवन-चरित का मुख्य उद्देश्य यही है कि लोग उसे पढ़ कर शिक्षा लाभ करें, और तदनुसार कार्य करने में सोत्साह प्रवृत्त हों।

भारतवर्ष में अनेकानेक ऐसे विद्वान् होगये हैं जिनकी विद्वत्तारूपी कीर्तिकैामुदी अद्यावधि सर्व-व्यापिनी हो अपनी किरणें सर्वत्र फैला रही है। परन्तु बड़ा ही खेद है कि उन पुरुषों के निष्कलङ्क चरित का सन्तोषदायी पता हम लोगों को नहीं मिलता, जिससे बहुत से आधुनिक विज्ञवरों को, इच्छा रहने पर भी, उन लोगों के जीवनकार्यों का उल्लेख कर लेखनी को पवित्र करने का अवसर नहीं मिलता।

हमारे मिथिलादेश में भी यही दशा है। बहुत यत्न करने पर मैंने महामहोपाध्याय कविवर विद्यापति का जीवनचरित संग्रह कर सरस्वती में प्रकाशित करने का सैाभाग्य प्राप्त किया था; और उस समय मेरी उत्कट इच्छा थी (अब भी है) कि गोकुलनाथ, वाचस्पति, पक्षधर, मण्डन मिश्र इत्यादि विद्वानों का जीवनचरित प्रकाशित कर अपने उद्देश्य को सफल करूँ; परन्तु उन लोगों के पूर्णरूप से सप्रमाण चरित्रों के न पाने के कारण मैं अभी इससे विरत हूं।

इन दिनों लोगों का चित्त हिन्दी की ओर झुका है, और उसके सुधार के लिये कितने ही उत्साही विद्वान् प्रयत्न भी कर रहे हैं; परन्तु बड़े दुःख की बात है कि उचित प्रबन्ध हिन्दी के प्रचार का नहीं होता है। हिन्दी के लेखक बहुत से दिखाई देते हैं; परन्तु वे केवल उपन्यासों ही को लिखना अपना कर्तव्य कर्म समझते हैं। वेङ्कटेश्वर समाचार, भारतमित्र आदि पत्रों में इस विषय की आलोचना पूर्ण रीति से हुई है, और हुआ करती है।

उपन्यास-लेख-प्रणाली के द्वारा सिवा हानि के हिन्दी के लिये उपकार की सम्भावना प्रायः कम है; क्योंकि इन उपन्यासों से क़िस्से जानने के अतिरिक्त बहुत कम कोई लाभ उठा सकता है। न इन उपन्यासों की भाषा शुद्ध है; न इनके पढ़ने से किसीको कुछ उपदेश मिल सकता है। जब तक हमारे देश के संस्कृत और अङ्गरेज़ी के अच्छे अच्छे विद्वान् दृढ़-प्रतिज्ञ हो हिन्दी में काव्य, इतिहास आदिक उपयोगी ग्रन्थ नहीं लिखने लगेंगे, तब तक हिन्दी भाषा के सुधरने का उपाय नहीं देख पड़ता। जहां कहीं भाषा की उन्नति हुई है वहां इसी रीति पर हुई है। और हम इस लेख में भी यही दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि बाबू दीनबन्धु मित्र अनेकानेक कष्ट सहने पर भी अपनी मातृभाषा की उन्नति करने में कभी विरक्तचित्त नहीं हुए। दृढ़तापूर्वक अपने कर्तव्य कर्म का इन्होंने पालन किया। इनका संक्षिप्त जीवनचरित वङ्गभाषा के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बाबू वङ्किमचन्द्र ने वङ्गभाषा में लिखा है। मैं उसीका भावार्थ उन्हीं के मुँह से आप लोगों को सुनाता हूं।

दीनबन्धु के जीवनचरित लिखने का अभी समय नहीं हुआ है। किसी व्यक्ति को सिलसिलेवार जीवन-घटना ही लिखना जीवनचरित का उद्देश्य नहीं है। जो सम्प्रति इस संसार को त्याग गया है, उसकी प्रकृत घटनाओं के लिखने में ऐसी अनेक बातों का उल्लेख करना पड़ेगा जिनमें जीवित मनुष्य लिप्त हैं। कभी उन जीवितों की निन्दा और उनको दुःखदायी वचन कहने का प्रयोजन पड़ेगा। और ऐसे अनेक गुप्त विषय भी खोलने पड़ेंगे जो जीवित व्यक्तियों के मर्मभेदी और हानिकारी होंगे।

एक व्यक्ति के वृत्तान्त को जान कर दूसरे को शिक्षा प्राप्त हो—जीवनचरित का यदि यह यथार्थ उद्देश्य हो तो वर्णनीय व्यक्ति के दोष गुणों का वर्णन करना आवश्यक है। दोषशून्य मनुष्य पृथ्वी में जन्मग्रहण नहीं करते। दीनबन्धु में कोई दोष नहीं था, यह हम किस साहस से कहेंगे। एतावता, चाहे जिन कारणों से हो, अभी इनका जीवनचरित लिखना उचित नहीं है। और लिखने का उतना प्रयोजन भी नहीं है। वङ्गदेश में दीनबन्धु को कौन नहीं जानता, किसके सङ्ग इनका परिचय और मेल नहीं था, और वह किस प्रकृति के हैं, यह किसे विदित नहीं था। इसलिए फिर इन बातों के जानने की इतनी आवश्यकता नहीं है। इन्हीं कारणों से मैं अभी उनका प्रकृत जीवनचरित नहीं लिखूँगा। जो कुछ लिखूँगा सो पक्षपात-शून्य होकर लिखने का यत्न करूँगा। दीनबन्धु के स्नेह-ऋण का मैं ऋणी हूं। परन्तु इससे मैं मिथ्या प्रशंसा द्वारा इस ऋण का परिशोध नहीं करूँगा।

पूर्व वङ्गाल रेलवे (ई० बी० एस० रेलवे) के काँचरापाड़ा स्टेशन के कई कोस ईशान कोण में चौबेलिया गाँव है। यमुना नाम की एक नदी उस गाँव को प्रायः चारों ओर से वेष्टन किये हुए है। इसीसे इसका नाम चौबेलिया है। यही गाँव दीनबन्धु की जन्मभूमि है। और यह नदिया ज़िले के अन्तर्गत है। नदिया में वङ्गसाहित्य, दर्शन, और धर्मशास्त्र का विशेष गौरव है। और दीनबन्धु का नाम भी उसके एक गौरव की वस्तु है। सन् १२३६ साल (१८३० ईसवी) में दीनबन्धु का जन्म हुआ। वे कालाचाँद मित्र के पुत्र थे। उनकी बाल्यावस्था की कोई अधिक कथा लिखने के योग्य नहीं है। अल्प वयस में कलकत्ते आकर हेयर स्कूल में अङ्गरेज़ी पढ़ना उन्होंने आरम्भ किया, और पाठावस्था ही में उसी विद्यालय से वे वङ्गभाषा में कविता रचने लगे।

उसी समय प्रभाकर के सम्पादक ईश्वरचन्द्र गुप्त से उनका परिचय हुआ। वङ्गसाहित्य की उस काल में बड़ी दुरवस्था थी, और प्रभाकर उस समय का परमोत्कृष्ट सम्वादपत्र था। ईश्वरचन्द्र गुप्त उस काल में वङ्गसाहित्य के ऊपर एकाधिपत्य करते थे। छात्रगण उनकी कविता से मुग्ध होकर उनसे मिलने को व्यग्र होते थे। और तरुण लेखकों को उत्साह देने में वे बड़े उत्सुक थे। हिन्दू पेट्रियट ने यथार्थ लिखा था कि आधुनिक लेखकों में ईश्वरचन्द्र गुप्त

के अनेक शिष्य हैं। परन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि उनकी शिक्षा का फल कितना स्थायी हुआ।

दीनबन्धु प्रभृति उत्कृष्ट लेखकों की भांति यह क्षुद्र लेखक भी ईश्वरचन्द्र गुप्त का ऋणी है। इस लिए उनकी अप्रशंसा लिख कर अपनी अकृतज्ञता का परिचय देने में मैं इच्छुक नहीं हूँ। परन्तु आधुनिक समय के अनुसार यह कहना ही पड़ेगा कि ईश्वरचन्द्र गुप्त की रुचि इन दिनों की सी शुद्ध और उन्नत नहीं थी। उनके शिष्यों में अनेकों ने, उनकी दी हुई शिक्षा को भूल, दूसरे पथ पर गमन किया है। बाबू रङ्गलाल वन्द्योपाध्याय प्रभृति की रचना में ईश्वरगुप्त की शिक्षा का कोई चिन्ह नहीं पाया जाता है। केवल दीनबन्धु ही की रचना में उनकी शिक्षा का चिन्ह मिलता है।

बङ्गसाहित्य में चार रहस्यपटु लेखक माने जा सकते हैं। प्रथम टेकचाँद, द्वितीय हुतोम, तृतीय ईश्वर गुप्त, और चतुर्थ यही दीनबन्धु। इसमें द्वितीय प्रथम के, और चतुर्थ तृतीय के शिष्य थे। हुतोम की जितनी सदृशता टेकचाँद के साथ थी, ईश्वरचन्द्र की दीनबन्धु के साथ उतनी तो नहीं परन्तु बहुत कुछ थी। भेद इतनाहीं था, कि ईश्वर गुप्त का लेख व्यङ्गप्रधान था और दीनबन्धु के लेख में हास्यरस मुख्य है। परन्तु वे दोनों व्यङ्ग और हास्य लिखा करते थे। तथापि वे दोनों रसों में समानपटु न थे, अर्थात् हास्यरस में ईश्वर गुप्त दीनबन्धु के सदृश नहीं थे।

मैं जहां तक जानता हूँ मानवचरित नामक दीनबन्धु की प्रथम कविता रचना है। ईश्वर गुप्त से सम्पादित साधुरञ्जन नामक साप्ताहिकपत्र में वह प्रकाशित हुई थी। उसमें अनुप्रास का बड़ा आडम्बर है। और इससे ईश्वर गुप्त की शिक्षा का फल बोध होता है। मैं नहीं जान सकता हूँ कि इस कविता के पढ़ने से दूसरों को कैसा मालूम हुआ; परन्तु मुझे तो उसने अत्यन्त मोहित किया। मैंने वह सम्पूर्ण कविता कण्ठस्थ कर ली थी; और जब तक साधुरञ्जन की वह संख्या फट नहीं गई तब तक उसे मैंने नहीं छोड़ा। इस समय उसको प्रायः सत्ताईस वर्ष हुए। उसके अनन्तर मैंने उस कविता को और कभी नहीं देखा; परन्तु मैं उससे ऐसा मुग्ध हुआ था, कि अब तक स्मरण करके उसके कुछ शब्द कह सकता हूँ। पाठकों को वह कविता देखने की अब सम्भावना नहीं है; क्योंकि वह पुनर्वार मुद्रित नहीं हुई।

उसी समय से दीनबन्धु कभी कभी अपनी कवितायें प्रभाकर में लिखा करते थे। उनकी बनाई कविताओं का आदर वाचकों में होता था; और अब भी होता है। उन्होंने पूर्वावस्था में जैसे अपनी काव्यशक्ति का परिचय दिया था उसके अनुसार उनका असाधारण 'सुरधुनी काव्य' और उनकी 'द्वादश कविता' नहीं हुई। उन्होंने दो वर्ष जमाई षष्ठी के समय में 'जमाई-षष्ठी' नामक दो कवितायें लिखी थीं; ये दोनों कवितायें समाज में अत्यन्त प्रशंसित हुईं; और अत्यन्त आग्रह से पढ़ी गईं। दूसरे वर्ष प्रभाकर की जिस संख्या में 'जमाई-षष्ठी' प्रकाशित हुई थी उसे पुनर्मुद्रित करना पड़ा था। 'सुरधुनी काव्य' और 'द्वादश कविता' इसके सदृश प्रशंसित नहीं हुईं। पाठक उसका कारण सहज ही में अनुभव कर सकते हैं। हास्यरस में दीनबन्धु को अद्वितीय सामर्थ्य था और 'जमाई षष्ठी' में हास्यरस प्रधान है। 'सुरधुनी काव्य' और 'द्वादश कविता' में तो हास्यरस का लेश भी नहीं है। प्रभाकर में दीनबन्धु ने जितनी कवितायें लिखी थीं वे यदि फिर से भी छापी जायँ तो उन सबों का विशेष आदर होने की सम्भावना है।

हम लोगों ने देखा है कि किसी किसी सम्वाद-पत्र में 'कालेजीय कवितायुद्ध' का उल्लेख हुआ था। उसमें गौरव की कथा कुछ नहीं है। इससे उस विषय में मैं कुछ नहीं कहूँगा। नवीन वयस में गाली देना अच्छा लगता है। और प्रायः विद्यालय के छात्रगण आपस में एक दूसरे को गाली दिया ही करते हैं। दीनबन्धु तो सदा हास्यप्रिय थे ही। इसी से ऐसी घटना हुई थी।

दीनबन्धु का 'विजयकामिनी' नामक एक छोटा सा उपाख्यान प्रभाकर में प्रकाशित हुआ था। उसमें नायक का नाम विजय ग्रैर नायिका का नाम कामिनी था। इसके दस बारह वर्ष बाद बोध होता है कि 'नवीन तपस्विनी' लिखा गया था। उसमें भी नायक का नाम विजय ग्रैर नायिका का नाम कामिनी रक्खा गया है। चरित्रगत उपाख्यान, काव्य ग्रैर नाटक के नायक नायिका में विशेष प्रभेद नहीं है। यह छोटा सा उपाख्यान ग्रत्यन्त सुन्दर हुआ था।

दीनबन्धु हेग्रर स्कूल से हिन्दू कालेज में गये, ग्रैर वहां कई वर्ष छात्रवृत्ति ग्रहण कर उस कालेज के उत्कृष्ट विद्यार्थियों में गण्य हुए। दीनबन्धु की पाठावस्था के विषय में मैं ग्रधिक नहीं जानता। क्योंकि उस समय मुझको उनसे साक्षात् परिचय नहीं था।

जान पड़ता है, यह सन् १८५५ ई० में, कालेज परित्याग कर डेढ़ सौ रुपये मासिक पर पटने के पोस्ट मास्टर हुए; ग्रैर छः ही महीने में इस कार्य में उन्होंने ग्रपना नाम किया। डेढ़ ही वर्ष में उनकी पदवृद्धि हुई। वे उड़ीसा के इन्स्पेक्टिङ्ग पोस्टमास्टर हुए। पदवृद्धि तो हुई; परन्तु उस समय उनका वेतन नहीं बढ़ा;—कुछ काल के ग्रनन्तर बढ़ा।

दीनबन्धु इन्स्पेक्टिङ्ग पोस्टमास्टर होने के बदले, डेढ़ सौ मासिक पर, सदा के लिये पोस्ट मास्टर ही रहते तो ग्रच्छा था। क्योंकि इनकी पदवृद्धि बहुत ही हानिकारिणी हुई। पहले इस पद के कार्यों का यही नियम था कि इन लोगों को सदा नाना स्थानों में भ्रमण कर पोस्ट-ग्राफ़िस के कामों की जाँच करना पड़ता था; परन्तु ग्रब इस पदाधिकारीवाले छः महीने तक ग्रपने हेडक्वार्टर में रह सकते हैं। उनको साल में कहीं एक, कहीं दो, कहीं तीन दिन रह कर भ्रमण करना होता था। इसी भाँति क्रमागत प्रतिवर्ष के परिश्रम से लोहे का शरीर भी नष्ट हो जासकता है। हरदम घूमने से लोहे का पहिया भी टूट जाता है। रुधिर मांस का शरीर इस परिश्रम को कहां तक सह सकेगा। दीनबन्धु को भी ऐसा परिश्रम ग्रधिक दिन सह्य नहीं हुग्रा। बङ्गदेश के दुर्भाग्य से ही वह इन्स्पेक्टिङ्ग पोस्टमास्टर हुए थे।

यद्यपि इसमें हमलोगों का मूल धन तो ग्रवश्य नष्ट हुग्रा; परन्तु उससे कुछ लाभ नहीं हुग्रा, ऐसा नहीं। हास्य-रस-निपुण लेखक को एक शिक्षा का बहुत प्रयोजन है। नाना प्रकार के मनुष्यचरित्र देखने से वह शिक्षा प्राप्त होती है। दीनबन्धु ने ग्रनेक देश भ्रमण करके ग्रनेक चरित्रवाले मनुष्यों से मेल कर वह शिक्षा लाभ की थी। इसी शिक्षा के प्रभाव से वे ग्रनेक प्रकार के रहस्ययुक्त चरित्र लिखने में समर्थ हुए। उनके लिखे नाटकों में जिस प्रकार मनुष्यचरित्र की विचित्रता है, वैसी बँगला साहित्य में ग्रैर कहीं नहीं पाई जाती है। दीनबन्धु उड़ीसा से नदिया भेजे गये ग्रैर वहां से ढाका गये। उस समय नील के बारे में गड़बड़ होना ग्रारम्भ हुग्रा था। वे ग्रनेक स्थान भ्रमण कर नील-वाले साहबों के ग्रत्याचारों से विशेष ज्ञात हुए थे। इसीसे उन्होंने 'नीलदर्पण' लिखकर बङ्गदेश की प्रजा को सदा के लिए ग्रपना ऋणी बनाया।

दीनबन्धु भली भाँति जानते थे कि वे 'नील-दर्पण' के लेखक हैं,—यह बात प्रकाशित होने से उनका ग्रनिष्ट होने की सम्भावना है। क्योंकि जिन जिन ग्रङ्गरेज़ों के साथ वे काम करते थे वे लोग नीलवालों के मित्र थे। विशेष करके यह कि पोस्ट-ग्राफ़िस के काम के कारण नीलवालों के समान ग्रनेक ग्रङ्गरेज़ों में उनको जाना पड़ता था। वे लोग शत्रुता करके विशेष ग्रनिष्ट करें या नहीं, परन्तु सर्वदा उद्विग्न कर सकते हैं। ये सब बातें जानकर भी उन्होंने 'नीलदर्पण' का प्रचार करने से मुख नहीं मोड़ा। उस पर ग्रन्थकार का नाम नहीं था, यह ठीक है; परन्तु दीनबन्धु ने, ग्रन्थकार का नाम गोपन करने में, ग्रैर कोई यत्न नहीं किया। नीलदर्पण के प्रचार होते ही, न जानें कैसे, बङ्गाल में सब कोई जान गये कि दीनबन्धु ही इसके रचयिता हैं।

राजा भगवानदास ।